संस्थापित १८६७ ई.

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १३० ● : अंक ०४ ● २३ जनवरी २०२५ (गुरुवार) माघ कृष्णपक्ष नवमी सम्वत् २०८१ ● दयानन्दाब्द २०० वेद व मानव सृष्टि सम्वत्:१६६०८५३१२५

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. की अन्तरंग सभा की बैठक सफलतापूर्वक समपन्न

आर्य समाज के 150वें स्थापना वर्ष पर प्रदेश के समस्त आर्यों को भागीदारी का अनुपम अवसर

-देवेन्द्रपाल वर्मा

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. की अन्तरंग सभा की बैठक दिनांक १९ जनवरी, २०२५ को नारायण स्वामी भवन, ५, मीराबाई मार्ग, लखनऊ में सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई।

अपने अध्यक्षीय सम्बोधन में सभा प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा जी ने कहा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा मुम्बई के गिरगांव (काकड़वाड़ी) में दिनांक १० अप्रैल, १८७५ ई. को आर्य समाज की स्थापना की गई थी। जिसके १५० वर्ष २०२५ में पूर्ण होने जा रहे हैं। गत वर्ष महर्षि की २००वीं जयन्ती पूरे विश्व में अनेकों विशाल समारोहों के रूप में मनाई गयी।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा आर्य समाज की स्थापना का मुख्य उद्देश्य वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार एवं समाज में व्याप्त पाखंड व अन्धविश्वास को समूल नष्ट करना आदि था। आज वेदों के प्रचार के लिए सम्पूर्ण संसार में केवल आर्य समाज ही जाना जाता है। ''स्वराज्य'' शब्द के प्रथम उद्घोषक महर्षि ही थे। उनकी प्रेरणा से ही भारत के पराधीनता की बेड़ियाँ टूटी और हम आजाद हुए। समाज को सही दिशा, सनातन संस्कृति का विस्तार व कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम् के लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही महर्षि ने आर्य समाज की स्थापना की थी। हम सब महर्षि के पद चिन्हों पर चलने वाले, संसार के सर्वोच्च ज्ञान को आधार मानकर चलने वाले आर्य हैं। इसी ज्ञान के कारण भारत कभी विश्व गुरू था। इसीलिए अब हम सबकी नैतिक जिम्मेदारी है कि हम अपने अपने कर्त्तव्यों व दायित्वों का निर्वाह प्राणप्रण से करें, ऐसा संकल्प लेना होगा।

वर्तमान समय में आर्य समाज की स्थिति अधिक उत्साहजनक व संतोषप्रद नहीं है। ''कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम्'' का उद्घोष, मात्र औपचारिक न रह जाये। इसके लिए परिणामदायी प्रयास योजनाबद्ध तरीके से तहसील, जिला स्तर पर करने होंगे। छोटे से छोटे सदस्य व समाज, विद्यालय, गुरूकुल, आर्यवीर/ वीरांगना आदि सभी को साथ लेकर चलना होगा। सबको अपना लक्ष्य निर्धारित कर कार्य करना होगा। किये कार्य की समीक्षा करना भी आवश्यक है।

आर्य समाज स्थापना के १५०वें वर्ष को ''आर्य समाज सार्द्ध शताब्दी'' के रूप में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा मनाने का निर्णय दिनांक २९ व ३० मार्च को स्थान नबी मुम्बई के वासी में सिडको एग्जीवीशन सेन्टर में लिया गया है। उक्त तारीखों को ध्यान में रखकर सभी समाजें अपने उत्सवों आदि का निर्धारण करें। सार्द्ध शताब्दी समारोह के लिए अभी से तैयारी शुरू कर दें। अधिक से अधिक संख्या में पहुंच कर समारोह को सफल बनावें।

प्रातः सभा प्रांगण की यज्ञशाला में प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा के यजमानत्व में तथा तमाम पदाधिकारियों व अन्तरंग सदस्यों आदि की उपस्थिति में देव यज्ञ आचार्य संजीव रूप जी के ब्रह्मत्व में सम्पन्न हुआ।

अन्तरंग सभा की बैठक पूर्वाहन नारायण स्वामी भवन में सभा प्रधान की अध्यक्षता में ईश प्रार्थना के पश्चात् शुरू हुई। पूर्व प्रेषित एजेन्डे के अनुसार विषयानुरूप कार्यवाही की सम्पुष्टि, विचार व आयोजनों आदि को क्रमानुसार पारित किया गया। अन्य विषयों के लिए सर्व सम्मति से सभा प्रधान जी को अधिकृत किया गया।

बैठक में श्रीमती गायत्री दीक्षित जी उप प्रधान, श्री मनमोहन तिवारी जी उप प्रधान, श्री पंकज जायसवाल मंत्री, श्री अरविन्द कुमार कोषाध्यक्ष, श्री विजेन्द्र सिंह, श्री ज्ञानेन्द्र मलिक सभी उप मंत्री, आचार्य दीपक आर्य पुस्तकाध्यक्ष, सर्वश्री राम नरायन आर्य बाराबंकी, विजय पाल मिश्रा बलिया, रामदेव शास्त्री वाराणसी, संजय तिवारी बलरामपुर, विपिन कुमार आर्य गौतम बुद्ध नगर, लोकेश आर्य, अमितेश अमित, शाहजहाँपुर, राजा सिंह भदौरिया फतेहपुर, पी. एन. मिश्रा प्रयागराज, भूपेन्द्र चौधरी अलीगढ़, सुरेश चन्द गुप्ता हाथरस, विजयपाल सरन सम्भल, राजकुमार अग्रवाल देवरिया, रामगोपाल आर्य उन्नाव अशोक कुमार कानपुर, डॉ. विनय प्राणाचार्य गोरखपुर, रामकृष्ण पट्टू आदि की गरिमामई उपस्थिति रही।

वेदामृतम्

ईशे हि शक्रस् तमूतये हवामहे, जेतारमपराजितम्।
स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ।। साम ६४६

संकटापन्न व्यक्ति समर्थ को ही रक्षा के लिए पुकारता है। जो अपनी रक्षा करने तक में असमर्थ है, वह भला किसी दूसरे की रक्षा क्या करेगा? जब हम संसार में 'समर्थ' की खोज करने निकलते हैं, तो देखते हैं कि जो बड़े-से-बड़े समर्थ कहलाने वाले राजे-महाराजे आदि भी हैं, वे भी किसी समय स्वयं को सर्वथा अशक्त और असमर्थ पाते हैं। वे भी संकट की घड़ी में जिस सर्वशक्तिमान् को पुकारते हैं, हम भी उसे ही क्यों न पुकारें ? वह है त्रिलोकी का आत्मा सम्राटों का सम्राट इन्द्र प्रभु। वह 'ईश्वर' है। ईश्वर उसे कहते हैं, जो करने, न करने या अन्यथा करने में समर्थ हो, किसी अन्य के अधीन न हो। पर इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वह किन्हीं नियमों में बंधा नहीं होता। स्वयं के बनाये नियमों में वह भी बद्ध होता है। हम उसी राजाधिराज परम प्रभु इन्द्र को आत्मरक्षा के लिए पुकारते हैं। वह प्रभु 'जेता' है। प्रथम तो कोई उस अज्ञात-शत्रु से शत्रुता ठानता ही नहीं, पर यदि उससे या उसके सखा से कोई शत्रुता करे भी तो वह उसे क्षणभर में जीत लेता है। वह प्रभु 'अपराजित' है, किसी से आज तक हारा नहीं, न ही भविष्य में किसी से हार सकता है।

वह शक्तिशाली इन्द्र प्रभु हमें अपनी रक्षा में लेकर हमारे द्वेषभावों को तथा हमसे द्वेष करने वाले मानव-शत्रुओं को पूर्णतः अतिक्रान्त कर दे तथा हमें भी अपने समान अजातशत्रु बना दे। वह इन्द्र परमेश्वर 'ऋतु' है, सुप्रज्ञ है तथा सुकर्मा है, पूर्ण ज्ञानवाला तथा पूर्ण कर्मोंबाला है। वह 'छन्दः' है, श्रेष्ठ जनों को आह्लादित करनेवाला, उन्हें अपनी छत्रछाया से आच्छादित करने वाला और सबका अर्चनीय है। वह 'ऋत' है, सत्य-स्वरूप है। वह 'बृहत्' है, महान् है।

आओ, ऐसे अद्वितीय राजराजेश्वर परम प्रभु इन्द्र को हम भी अपना सखा बनाएँ और रक्षार्थ पुकारें।

साभार-वेदमंजरी

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

पंकज जायसवाल
मंत्री/सम्पादक

आर्य शिवशंकर वैश्य
प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

प्रतिकूलता में सुख

''जिन परिस्थितियों को आप बदल नहीं सकते, उनमें स्वयं को बदल लें, अर्थात अपना विचार बदल लें, और मन से सदा प्रसन्न रहें।''

संसार में प्रत्येक व्यक्ति के विचार संस्कार और कर्म अलग अलग होते हैं। ''उसके पूर्व जन्म के संस्कारों के आधार पर वह अपने इस वर्तमान जन्म में सोचता, बोलता और आचरण करता है।'' सबके विचार संस्कार अलग अलग होने के कारण, एक जैसी परिस्थिति में सब लोग एक जैसा नहीं सोच पाते। और इसी कारण से वे सब परिस्थितियों में प्रसन्न भी नहीं रह पाते।

''किसी का सोचने का ढंग बहुत कुछ ठीक है, किसी का आधा ठीक है, किसी का चौथाई ठीक है, किसी का बहुत ही गलत है, बिल्कुल भी ठीक नहीं है। यह सोचने का ढंग अलग अलग होने से सब लोग सुखी दुखी होते रहते हैं।'' यदि आप दुख से बचना और सुख से जीना चाहते हों, तो उसका उपाय यह है--

निम्नलिखित सिद्धांतो को प्रतिदिन दोहराइए और अपने मन में बिठा लीजिए/याद कर लीजिए। ''सदा सब को अनुकूल परिस्थितियां नहीं मिल पाती। सदा सबकी इच्छाएं पूरी नहीं हो पाती। सारी इच्छाएं तो कभी भी नहीं पूरी हो सकती। जितनी जितनी इच्छाएं पूरी होती जाती हैं, उतनी उतनी इच्छाएं बढ़ती जाती हैं। जो इच्छाएं बच जाती हैं, और पूरी नहीं हो पाती, वे उस व्यक्ति को दुख देती हैं। उसमें क्रोध ईर्ष्या जलन आदि दोषों को उत्पन्न करती हैं, जिनके कारण वह व्यक्ति परेशान रहता है।''

इन परेशानियों से या अशांति से बचने का उपाय यह है, कि अपने सोचने के ढंग को ठीक किया जाए। ''जब परिस्थिति आपके अनुकूल होती है, तब तो आप प्रसन्न होते ही हैं। विशेष कठिनाई तो तब होती है, जब परिस्थिति आपकी इच्छा के प्रतिकूल हो।''

''महत्त्व की बात तो यह है, कि जब परिस्थिति आपके प्रतिकूल हो, तब भी आप दुखी न हों।'' ''जो व्यक्ति इतना सीख जाएगा, वह सदा प्रसन्न रहेगा, कभी दुखी नहीं होगा। वही वास्तविक विजेता कहलाएगा। वही सफल व्यक्ति कहलाएगा।'' तो ऐसा कैसे हो पाएगा? यदि आप इस प्रकार से सोचें, तो ऐसा हो जाएगा --

''जब जब भी प्रतिकूल परिस्थिति आवे, तो अपने मानसिक उत्साह को कम न होने दें, उसे बनाए रखें।'' ''जो मिला और जितना मिला, उस को देखें। उसी से प्रसन्न रहें। जो नहीं मिला, उस को न देखें। इसका नाम है - संतोष का पालन करना।'' ''यदि कोई व्यक्ति आपका अधिकार छीन ले, और आप उससे अपना अधिकार प्राप्त करने में समर्थ न हों, तो उस प्रतिकूल परिस्थिति में अपने मन को शांत रखें,'' और मन में सोचें - ''कोई बात नहीं, ईश्वर न्याय करेगा.'' इस प्रकार से उस प्रतिकूल परिस्थिति में स्वयं को बदल लें, अपनी इच्छा/विचार को बदल लें।

''इस प्रकार से जो व्यक्ति संतोष का पालन करना सीख जाता है, प्रतिकूल परिस्थिति में स्वयं को बदलना सीख जाता है, वह जीवन में कभी कहीं दुखी नहीं होता। वह सदा सब जगह प्रसन्न रहता है। उसका जीवन सफल हो जाता है।''

इसलिए सोचने का ढंग ठीक करें। सदा संतोष का पालन करें। ''क्योंकि आप यहां संसार में सुख पूर्वक जीवन जीने के लिए आए हैं, रो-रो कर जीवन काटने के लिए नहीं। आज तो संसार के लोग जीवन को जी नहीं रहे, बल्कि जीवन को काट रहे हैं।''

एक व्यक्ति से पूछा - ''भाई ! आपका जीवन कैसा चल रहा है?'' उसने कहा - ''बस जिंदगी कट रही है.'' ''देखिए, लोग जीवन को जैसे तैसे काट रहे हैं, जी नहीं रहे। यह ठीक नहीं है। जीवन को काटना नहीं है, जीवन को आनंद से जीना है।'' और उसका उपाय ऊपर बतला दिया है, कि ''प्रत्येक परिस्थिति में अपने आप को समायोजित करना अर्थात एडजस्ट करना सीखें।''

-सम्पादक

गतांक से आगे.....

सत्यार्थ प्रकाश

अथ चतुर्दशसमुल्लासारम्भः

अथ यवनमतविषयं व्याख्यास्यामः

१४२-बस जब तुम मिलो उन लोगों से कि काफिर हुए बस मारो गर्दनें उन की यहां तक कि जब चूर कर दो उन को बस दृढ़ करो कैद करना और बहुत बस्तियां हैं कि वे बहुत कठिन थीं शक्ति में बस्ती तेरी से, जिस ने निकाल दिया तुझ को मारा हम ने उन को, बस न कोई हुआ सहाय देने वाला उन का तारीफ उस बहिश्त की कि प्रतिज्ञा किये गये हैं परहेजगार, बीच उस के नहरें हैं बिन बिगड़े पानी की, और नहरें हैं दूध की कि नहीं बदला मजा उन का. और नहरें हैं शराब की मजा देने वाली वास्ते पीने वालों के और नहरें हैं शहद साफ किये गये की और वास्ते उन के बीच उस के मेवे हैं प्रत्येक प्रकार से दान मालिक उन के से।।

- मं० ६। सि० २६। सू० ४७। आ० ४।१३ । १५

(समीक्षक) इसी से यह कुरान खुदा और मुसलमान गदर मचाने, सब को दुःख देने और अपना मतलब साधने वाले दयाहीन हैं। जैसा यहां लिखा है वैसा ही दूसरा कोई दूसरे मत वाला मुसलमानों पर करे तो मुसलमानों को वैसा ही दुःख जैसा कि अन्य को देते हैं हो वा नहीं? और खुदा बड़ा पक्षपाती है कि जिन्होंने मुहम्मद साहेब को निकाल दिया उनको खुदा ने मारा। भला! जिसमें शुद्ध पानी. दूध, मद्य और शहद की नहरें हैं वह संसार से अधिक हो सकता है? और दूध की नहरें कभी हो सकती हैं? क्योंकि वह थोड़े समय में बिगड़ जाता है! इसीलिये बुद्धिमान् लोग कुरान के मत को नहीं मानते ।१४२।

१४३-जब कि हिलाई जावेगी पृथिवी हिलाये जाने कर और उड़ाये जावेंगे पहाड़ उड़ाये जाने कर बस हो जावेंगे भुनगे टुकड़े-टुकड़े बस साहब दाहनी ओर वाले क्या हैं साहब दाहनी ओर के और बाई ओर वाले क्या हैं बाई ओर के ऊपर पलङ्ग सोने के तारों से बुने हुए हैं। तकिये किये हुए हैं ऊपर उनके आमने-सामने और फिरेंगे ऊपर उनके लड़के सदा रहने वाले साथ आबखोरों के और आफताबों के और प्यालों के शराब साफ से नहीं माथा दुखाये जावेंगे उस से और न विरुद्ध बोलेंगे और मेवे उस किस्म से कि पसन्द करें। और गोश्त जानवर पक्षियों के उस किस्म से कि पसन्द करें। और वास्ते उन के औरतें हैं अच्छी आंखों वाली मानिन्द मोतियों छिपाये हुओं की। और बिछौने बड़े ।। निश्चय हम ने उत्पन्न किया है औरतों को एक प्रकार का उत्पन्न करना है। बस किया है हम ने उन को कुमार कुमारी सुहागवालियां बराबर अवस्था वालियां बस भरने वाले हो उस से पेटों को। बस कसम खाता हूँ मैं साथ गिरने तारों के।।

-मं० ७। सि० २७। सू० ५६। आ० ४।५।६।८।९।१५।१६।१७।१८।१९। २०।२१। २२ । २३ । ३३ । ३४।३५। ३६ । ३७।३८।५३

(समीक्षक) अब देखिये कुरान बनाने वाले की लीला को! भला पृथिवी तो हिलती ही रहती है उस समय भी हिलती रहेगी। इस से यह सिद्ध होता है कि कुरान बनाने वाला पृथिवी को स्थिर जानता था! भला पहाड़ों को क्या पक्षीवत् उड़ा देगा ? यदि भुनगे हो जायेंगे तो भी सूक्ष्म शरीरधारी रहेंगे तो फिर उन का दूसरा जन्म क्यों नहीं? वाह जी ! जो खुदा शरीरधारी न होता तो उस के दाहिनी ओर और बाई ओर कैसे खड़े हो सकते ? जब वहाँ पलङ्ग सोने के तारों से बुने हुए हैं तो बढ़ई सुनार भी वहाँ रहते होंगे और खटमल काटते होंगे जो उन को रात्रि में सोने भी नहीं देते होंगे। क्या वे तकिये लगाकर निकम्मे बहिश्त में बैठे ही रहते हैं वा कुछ काम किया करते हैं? यदि बैठे ही रहते होंगे तो उन को अन्न पचन न होने से वे रोगी होकर शीघ्र मर भी जाते होंगे? और जो काम किया करते होंगे तो जैसे मेहनत मजदूरी यहां करते हैं वैसे ही वहाँ परिश्रम करके निर्वाह करते होंगे फिर यहां से. वहाँ बहिश्त में विशेष क्या है? कुछ भी नहीं। यदि वहाँ लड़के सदा रहते हैं तो उन के माँ बाप भी रहते होंगे और सासू श्वसुर भी रहते होंगे तब तो बड़ा भारी शहर बसता होगा फिर मल मूत्रादि के बढ़ने से रोग भी बहुत से होते होंगे क्योंकि जब मेवे खावेंगे, गिलासों में पानी पीवेंगे और प्यालों से मद्य पीवेंगे न उन का सिर दूखेगा और न कोई विरुद्ध बोलेगा यथेष्ट मेवा खावेंगे और जानवरों तथा पक्षियों के मांस भी खावेंगे तो अनेक प्रकार के दुःख, पक्षी, जानवर वहाँ होंगे, हत्या होगी और हाड़ जहाँ तहां बिखरे रहेंगे और कसाइयों की दुकानें भी होंगी। वाह क्या कहना इनके बहिश्त की प्रशंसा कि वह अरब देश से भी बढ़ कर दीखती है !!! और जो मद्य मांस पी खा के उन्मत्त होते हैं इसी लिये अच्छी-अच्छी स्त्रियां और लौंडे भी वहाँ अवश्य रहने चाहिये नहीं तो ऐसे नशेबाजों के शिर में गरमी चढ़ के प्रमत्त हो जावें। अवश्य बहुत स्त्री पुरुषों के बैठने सोने के लिये बिछौने बड़े-बड़े चाहिये। जब खुदा कुमारियों को बहिश्त में उत्पन्न करता है तभी तो कुमारे लड़कों को भी उत्पन्न करता है। भला! कुमारियों का तो विवाह जो यहां से उम्मीदवार हो कर गये हैं उन के साथ खुदा ने लिखा पर उन सदा रहने वाले लड़कों का भी किन्हीं कुमारियों के साथ विवाह न लिखा तो क्या वे भी उन्हीं उम्मीदवारों के साथ कुमारीवत् दे दिये जावेंगे? इस की व्यवस्था कुछ भी न लिखी। यह खुदा में बड़ी भूल क्यों हुई? यदि बराबर अवस्था वाली सुहागिन स्त्रियाँ पतियों को पा के बहिश्त में रहती हैं तो ठीक नहीं हुआ क्योंकि स्त्रियों से पुरुष का आयु दूना ढाई गुना चाहिये, यह तो मुसलमानों के बहिश्त की कथा है। और नरक वाले सिहोड़ अर्थात् थोर के वृक्षों को खा के पेट भरेंगे तो कण्टक वृक्ष भी दोजख में होंगे तो कांटे भी लगते होंगे और गर्म पानी पीयेंगे इत्यादि दुःख दोजख में पावेंगे कसम का खाना प्रायः झूठों का काम है, सच्चों का नहीं। यदि खुदा ही कसम खाता है तो वह भी झूठ से अलग नहीं हो सकता।१४३।

१४४-निश्चय अल्लाह मित्र रखता है उन लोगों को कि. लड़ते हैं बीच मार्ग उसके के ।।

- मं० ७। सि० २८। सू० ६१। आ० ४।।

(समीक्षक) वाह ठीक है। ऐसी-ऐसी बातों का उपदेश करके विचारे अर्ब देशवासियों को सब से लड़ा के शत्रु बनाकर परस्पर दुःख दिलाया और मजहब का झण्डा खड़ा करके लड़ाई फैलावे ऐसे की कोई बुद्धिमान् ईश्वर कभी नहीं मान सकते जो मनुष्य जाति में विरोध बढ़ावे वही सब को दुःखदाता होता है।।१४४।।

क्रमशः अगले अंक में.....

धर्म की अवधारणा एवं तत्व

-राजेश चौरसिया

संस्कृत शब्दार्थ कोष के अनुसार, धर्म शब्द धारणार्थक धृ धातु से उत्पन्न है। जिसका अर्थ है धारण करना अतः धर्म का मूल अर्थ है जो धारण किया जाए अथवा जो व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को धारण करता है। यह सामान्य रूप से पदार्थ मात्र का वह प्राकृतिक तथा मूल गुण है, जो उसमें शाश्वत रूप से विद्यमान रहता है। किसी वस्तु का वस्तुत्व ही उसका धर्म कहा जाता है।

१. भारतीय परिप्रेक्ष्य में धर्म -

व्यास का कथन है कि ''आरणात् धर्म इत्याहु'' अर्थात् यह कहा जाता है कि धर्म वही है जिसे धारण किया जाता है। समाज में व्यक्ति जीवन प्रति जो धारणा बनाता है या धारणा करता है वही धर्म है। धर्म संस्कृत के ''धृ'' धातु से बना है जिसका अर्थ है जो धारण किया जाये। जब क्या धारण किया जाये स्पष्ट हो जाये तो वह धर्म बन जाता है। धर्म एक प्रकार से कर्त्तव्य के द्वारा कुछ समाजोपयोगी तथा आत्मोपयेगी बातों या गुणों को धारण करना कहा जा सकता है। जेम्स ने कहा है-''धार्मिक जीवन में आत्म समर्पण और त्याग को प्रोत्साहित किया जाता है और अनावश्यक बातो को इसलिये त्यागा जाता है, जिससे सुख की वृद्धि हो सके। इस प्रकार उन बातो को सरल और सुविधा जनक बनाता है, जो जीवन की प्रत्येक दशा में आवश्यक है।''

धृति क्षमा दमोस्तेयं
शौचमिन्द्रियनिग्रह।
धी विद्या सत्यमक्रोधो दशकम् धर्म
लक्षणम्।

धर्म के दस लक्षण धृति, क्षमा, दम, स्तेय, शुचिता, इन्द्रिय निग्रह, धीर, विज्ञा (ज्ञान), सत्य, अक्रोध (भावनात्मक असंतुलन) है।

अंग्रेजी में 'रिलीजन' शब्द की उत्पति लैटिन के दो शब्दों से हुई-री और लीगर । इसका अर्थ है टू बाइन्ड बैक'' अर्थात् ''सम्बन्ध स्थापित करना''। इस प्रकार, धर्म वह है जो सम्बन्ध स्थापित करता है। गिस्बर्ट ने लिखा है- ''धर्म दोहरा सम्बन्ध स्थापित करता हैः पहला मनुष्य और ईश्वर के बीच दूसरा - ईश्वर की संतान होने के कारण मनुष्य और मनुष्य के बीच''। धर्म के दो पक्ष आन्तरिक पक्ष में ईश्वर से सम्बन्धित मनुष्य के विचार, विश्वास और भावनायें आती है। बाह्य पक्ष में प्रार्थनायें और धार्मिक रीति रिवाज आते है। डासन ने स्पष्ट किया है -''जब कभी और जहाँ कही मनुष्य ऐसी बाह्य शक्तियो पर निर्भरता अनुभव करता है, जो रहस्यपूर्ण और मनुष्य की शक्तियों से कही अधिक उच्चतम मानी जाती है वही धर्म होता है।'' गिस्बर्ट के अनुसार- ''धर्म ईश्वर या सेवाओं के प्रति उसके उपर मनुष्य अपने को निर्भर अनुभव करता है, गतिशील, विश्वास एवं आत्म समर्पण है।

२. आध्यात्मिक पक्ष से धर्म-

हीगले के अनुसार- ''धर्म एक प्रकार का सार्वजनिक दर्शन है।'' टेलर का मत है कि- ''धर्म आध्यात्मिक जीवों में विश्वास है।'' इस प्रकार का विचार ह्वाइटहैड ने व्यक्त करते हुये लिखा है कि '' धर्म एक ऐसे तत्व का दर्शन है , जो हमारे परे पीछे और भीतर है- जो वास्तविक (सत्य) है और जिसकी अनुभूति की प्रतीक्षा होती है -जो ऐसा तत्व है, जिसकी अन्तिम आदर्श रूप से आशा रहित खोज होती है।'' आध्यात्मिक दृष्टि से धर्म मूल्यों की खोज और धारण करना है।

३. नीति के रूप में धर्म-

कान्ट ने कहा है -''धर्म हमारे सामने कर्त्तव्यो को देवी आदेशों के रूप में मान्यता देने को कहता है।'' इस प्रकार धर्म कर्तव्यपालन है रामचरितमानस में कई प्रसंगों में कर्तव्य पालन को धर्म की संज्ञा दी गयी है। अभिप्रेतार्थ यह निकालना चाहिये कि ''धर्म नैतिकता का श्रोत है। वहीं व्यक्ति नैतिक है ,जिसमे धर्म की भावना है। परन्तु नैतिकता धर्म का एक अंग है।

४. भावना के रूप में धर्म -

धर्म का पोषण मनुष्य की भावनाओं से होता है। हाकिंग ने धर्म की ''वह अन्तभाविना या प्रकृति कहा है जो अतः प्रेरणा के साथ होती है। '' सालोमन रीनास ने लिखा है कि-''धर्म इच्छाओं का योग है जो हमारी बौद्धिक शक्तियों के स्वतंत्र प्रयोग में बाधा डालती है।'' जबकी फ्रायड ने कहा है- ''धर्म को मानवता की दबी हुई भावनाओं से प्रेरित विश्वव्यापी मानस विकार माना जाना चाहिये।'' भावना ने ही धर्म में कट्टरता उत्पन्न की जो वर्तमान में विश्व समाज के समक्ष अनसुलझी उलझन है और इसने कई बार विश्व की मानव जाति को संकट में डाला।

५. धर्म एक संस्था के रूप में-

धर्म को एक सस्था के रूप में भी देखा जा सकता है क्योंकि इसका निर्माण सम्वेत रूप से समाज ने ही किया है और उनके वैचारिक भावनात्मक, परम्परात्मक एवं व्यवहारात्मक एकता पाई जाती है जिसका पालन उस धर्म के मानने वाले या संस्था के सदस्य करते है। धर्म को सदैव व्यापक अर्थ में स्वीकार करना चाहिए क्योंकि वह मानवता के प्रति व्यक्तिगण और सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक तथा सांसारिक लौकिक तथा पारलौकिक दोनों रूपों में विभिन्न कर्तव्यों के पालन में होता है। धर्म को धारण कर व्यक्ति का अस्तित्व एवं व्यक्तित्व दोंनों पूरा हों जाता है। धर्म जीवन के प्रति सर्वव्यापक सर्वदेशीय, सर्वकालिक दृष्टिकोण बनाता है। ग्रैण्डमाइसन लिखते है कि-''धर्म व्यक्तित्व और सामाजिक विश्वासों, स्थायी भावों और अभ्यासों का कुल योग है, जिसका अपना एक उदेश्य होता है, एक शक्ति जिसे मनुष्य सबसे बड़ा मानता है, जिस पर निर्भर रहता है और जिसके साथ वह संम्बन्ध स्थापित कर सकता है अथवा सम्बन्ध स्थपित कर लिया है।

धर्म की मुख्य विशेषताएं

१. अलौकिक शक्ति में विश्वास-

धर्म का संबंध अनेक ऐसे विश्वासों से है जो किसी अलौकिक शक्ति से संबंधित होते हैं। इस अलौकिक शक्ति को कुछ समूह साकार रूप में देखते हैं, जबकि कुछ समूहों में इस शक्ति का रूप निराकार माना जाता है। व्यक्ति यह विश्वास करते हैं कि यह अलौकिक शक्ति ही उन्हें जीवन में विभिन्न प्रकार के सुख-दुख, लाभ-हानि अथवा सफलताएँ और असफलताएँ देती है।

२. एक सैधान्तिक व्यवस्था-

धर्म में केवल विश्वासों का ही समावेश नहीं होता बल्कि इन विश्वासों को अनेक सिद्धान्तों के रूप में इस तरह विकसित किया जाता है जिससे अलौकिक शक्ति के प्रति व्यक्ति के विश्वास अधिक दृढ़ बन सकें। यही सिद्धांत 'धार्मिक वैचारिकी' का आधार होते हैं।

३. धार्मिक क्रियाओं व कर्मकाण्डों का समावेश

प्रत्येक धर्म में पूजा-आराधना की विभिन्न पद्धतियों, पवित्र आचरणों और तरह-तरह के कर्मकाण्डों का समावेश होता है। व्यक्तियों का यह विश्वास होता है कि इन क्रियाओं और कर्मकाण्डों के द्वारा ही अलौकिक शक्ति को प्रसन्न करके इच्छित फल प्राप्त किया जा सकता है। ईश्वर की आराधना, आत्म-संयम, तीर्थ-यात्राएँ, पवित्र कार्य, त्यागमय जीवन तथा संस्कारों की पूर्ति धार्मिक क्रियाओं और कर्मकाण्डों के ही विभिन्न रूप हैं।

४. प्रतीक व पौराणिक गाथाएँ-

सभी धर्मों में धार्मिक विश्वासों को कुछ प्रतीकों के द्वारा स्पष्ट किया जाता है। उदाहरण के लिए, हिन्दू धर्म में मूर्ति अलौकिक शक्ति का प्रतीक है, जबकि ईसाई धर्म में 'क्रास' ईसा मसीह के आर्शीवाद का प्रतीक है। रामायण, बाइबिल तथा कुरान आदि ईश्वरीय ज्ञान के प्रतीक हैं। रेशमी वस्त्र पवित्रता के सूचक हैं, जबकि फूल और धूपबत्ती आध्यात्मिक सुगन्ध के प्रतीक हैं। पौराणिक गाथाएँ अनेक कहानियों के रूप में मनुष्य और अलौकिक शक्ति के संबंध को स्पष्ट करती हैं।

५. उद्वेगपूर्ण अभिव्यक्त-

धर्म से संबंधित विश्वासों को लोग अनेक उद्वेगपूर्ण व्यवहारों के रूप में अभिव्यक्त करते हैं। भाव-विह्वल होकर प्रार्थना और नृत्य करना, शारीरिक कष्ट के साथ अलौकिक शक्ति में अपनी श्रद्धा दिखाना, किसी धार्मिक त्रुटि के लिए बड़े-बड़े प्रायश्चित करना तथा अलौकिक शक्ति के प्रति भय की भावना को विकसित करना उद्वेगपूर्ण अभिव्यक्ति के ही उदाहरण हैं। ऐसे व्यवहारों का बुद्धि और तर्क से कोई संबंध नहीं होता।

धार्मिक क्रियाएँ

विभिन्न धर्मों के मौलिक सिद्धान्तों के अध्ययन से यह पता चलता है कि इनमें से हर धर्म में अलौकिक, सर्वशक्तिमान शक्ति पर विश्वास निहित होता है। साथ ही इसी शक्ति को प्रसन्न करके लाभ उठाने तथा उसके कोप से बचने के लिए विभिन्न साधनों का विधान होता है। इन्हीं साधनों को धार्मिक क्रियाओं की संज्ञा दी जा सकती है। ये धार्मिक क्रियाएँ मुख्यतः हैं-

१. प्रार्थना-

धार्मिक क्रिया के रूप में प्रार्थना का स्थान लगभग प्रत्येक धर्म में ही सदा से महत्वपूर्ण रहा है। सभ्यता के उच्च स्तर पर प्रार्थना धार्मिक क्रिया का प्रधान अंग बन जाती है। प्रार्थना अलौकिक शक्ति को प्रसन्न करके उसकी कृपा-दृष्टि प्राप्त करने, उसके कोपों से बचने, अपराधों के लिए क्षमा-भिक्षा चाहने तथा भौतिक सुख, समृद्धि या सफलता को प्राप्त करने के लिए की जाती है।

२. समाधि-

ध्यानमग्न होकर उस अलौकिक शक्ति का चिन्तन करना, प्राणायाम करना, समाधि लगाना, योग साधना इत्यादि क्रियाएँ इस श्रेणी में आती हैं। इन क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य अलौकिक शक्ति का दर्शन पाना और उस अनादि शक्ति में ही लीन होने का प्रयत्न करना आदि होता है। भारत का धार्मिक इतिहास इस प्रकार की क्रियाओं के उदाहरणों से भरपूर है। अक्सर यह देखा जाता है कि मन्दिरों, मस्जिदों या गिरजाघरों आदि में अनेक व्यक्ति एकत्रित होकर सामूहिक रूप से पूजा-पाठ, कीर्तन, प्रार्थना, आराधना आदि करते हैं। बहुत दिनों तब जब एक सामूहिक धार्मिक क्रिया को बार-बार दोहराया जाता है तो वह एक धर्म विशेष का अंग बन जाती है। इसलिए हम यह पाते हैं कि इस्लाम धर्म को मानने वाले एकसाथ इकट्ठे होकर नमाज पढ़ते हैं तथा ईसाई लोग चर्च में सामूहिक प्रार्थना में सम्मिलित होते हैं।

३. सामूहिक क्रियाएं-

प्रत्येक धर्म में उचित और अनुचित आचरण के संबंध में निश्चित निर्देशन तथा मापदण्ड होते हैं। प्रायः प्रत्येक धर्म उन क्रियाओं को अनुचित ठहराता है जो समाज तथा ईश्वर के विरुद्ध होती हैं। कोई भी धर्म चोरी करने, झूठ बोलने, लालच करने, नास्तिक बनने आदि को पुण्य कार्यों के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं करता सदाचार, ईमानदारी, निष्कपट आचरण आदि पर अत्यधिक बल देता है, और कुछ ऐसे आचरण अनुकरणीय मानता है जिनके पालन की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। दूसरी ओर, कुछ ऐसे निषिद्ध कार्य भी होते हैं जिनके करने पर धर्म में दण्ड तक का विधान होता है।

४. बलि-

धर्म के इतिहास से अनेक प्रकार की बलियों के विषय में भी पता चलता है। इन बलियों को प्रमुख रूप से दो श्रेणियों में रखा जा सकता है- सम्मानात्मक बलि तथा पापनाशात्मक बलि। जब अलौकिक शक्ति को प्रसन्न करने के लिए उसके सम्मान में कोई वस्तु भेंट की जाती है तो उसे 'सम्मानात्मक बलि' कहते हैं। प्रसाद चढ़ाना, भोग लगाना, अन्न-वस्त्र आदि भेंट करना 'सम्मानात्मक' बलि के अन्तर्गत आता है। इसके विपरीत जब अपने किसी पाप का प्रायश्चित करने या अलौकिक शक्ति के रोष को शान्त करने के लिए किसी पशु, पक्षी अथवा प्राणी की बलि दी जाती है, तो उसे 'पापनाशात्मक बलि' कहते हैं। इस संबंध में यह स्मरणीय है कि इस प्रकार की बलि चढ़ाने की प्रथा सभ्यता के विकास के साथ-साथ कम होती जा रही है।

५. तान्त्रिक क्रियाएं-

तान्त्रिक क्रियाओं द्वारा मनुष्य को कष्ट देने वाले या उसका अनिष्ट करने वाले देवी-देवताओं तथा प्रेतों को वश में करने का प्रयत्न किया जाता है। प्राचीन काल में इन क्रियाओं का काफी प्रचलन था। इनमें जादू-टोनों और टोटकों को सम्मिलित किया जाता है। मन्त्रों द्वारा बीमारी ठीक करना, पानी बरसना तथा शत्रु को नुकसान पहुँचाना, और तावीज या तान्त्रिक अंगूठी द्वारा सन्तान दिला देना आदि तान्त्रिक क्रियाओं की ही विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं।

धर्म की उत्पत्ति के सिद्धांत

मानव-समाज में धर्म की उत्पत्ति कैसे हुई, इस संबंध में विद्वानों के अपने पृथक-पृथक् विचार हैं। विकासवादी लेखकों के अनुसार आधुनिक सभ्य समाज जनजातीय या आदिकालीन समाजों का ही क्रमिक विकसित रूप है, इस कारण धर्म की उत्पत्ति भी सर्वप्रथम जनजातीय समाजों में हुई होगी। अतः अनेक विद्वान जनजातियों के जीवन का विश्लेषण करके धर्म की उत्पत्ति और उसके प्रारम्भिक रूप को खोजने का प्रयत्न करते हैं। धर्म की उत्पत्ति के कुछ सिद्धांत इस तथ्य को और भी स्पष्ट कर देंगे-

१. धर्म की उत्पत्ति के टायलर का आत्मवाद-

टायलर के अनुसार, ''आत्मा की धारणा ही आदिम मनुष्यों से लेकर सभ्य मनुष्यों तक के धर्म के दर्शन का आधार है।'' यह आत्मावाद दो वृहत् विश्वासों में विभाजित है- प्रथम तो यह है कि

क्रमशः.....६ पर

धर्म और अधर्म

- शास्त्रार्थ महारथी
पं० रामचंद्र देहलवी जी

धर्म-जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत पालन और पक्षपात-रहित न्याय सर्वहित करना है, जो कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरीक्षित और वेदोक्त होने से सब मनुष्यों के लिए यही एक मानने योग्य है, उसको धर्म कहते हैं।

आइये, हम धर्म और अधर्म के स्वरूप पर विचार करें और सदैव धर्माचरण करने का निश्चय करें।

श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ने धर्म का लक्षण करते हुए सबसे पूर्व ईश्वर की आज्ञा का यथावत पालन करना आवश्यक समझा, जिससे ईश्वर का मानना स्वतः सिद्ध है। उस ईश्वर को न मानने वाला इस लक्षण के अनुकल धर्मात्मा नहीं समझा जा सकता।

बहुधा ऐसे मनुष्य दुनिया में मिलेंगे, जिनका ईश्वर में विश्वास नहीं, परन्तु वे भी सृष्टि नियमों को मानते हैं और उन पर चलते हैं । ऐसे पुरुष पूर्ण धर्मात्मा नहीं कहे जा सकते, चूकि उन्होंने नियामक के आवश्यक अंग को नहीं माना जिसके बिना, किसी भी नियम का निर्माण होना असम्भव है ।

अनुमान-प्रमाण विशेषकर मनुष्य के लिए ही है, जो कारण से कार्य और कार्य से कारण का अनुमान करके अपने कार्यों की सिद्धि करता है। प्रत्येक समय यह आवश्यक नहीं कि कार्य और कारण दोनों की प्रतीति एक ही साथ हो । यदि दुनिया में कहीं ऐसा नियम होता कि दोनों एक ही साथ होते तो अनुमान प्रमाण की आवश्यकता ही न होती।

जैसे बादलों को देखकर होने वाली वर्षा का और हुई वर्षा को देखकर उसके कारण रूप बादलों का अनुमान होता है, इसी प्रकार दुःख को देखकर पाप-कर्मों का, और पापकर्मों को देखकर दुःखों का अनुमान होता है । यदि कोई दुःखों को देखकर पाप-कर्मों का अनुमान करे, या सन्तान को देखकर माता-पिता का, तो उसको पूर्ण ज्ञानी नहीं कह सकते । इसी प्रकार यदि कोई सृष्टि नियमों को देख कर और स्वीकार करके भी उनके नियामक को स्वीकार न करे, तो वह भी पूर्ण ज्ञानी न समझा जायेगा। और जो पूर्ण ज्ञानी ही नहीं, वह पूर्ण धर्मात्मा ही कैसे हो सकता है ? चूकि धर्मात्मा के लिए ज्ञानपूर्वक कर्मों की हो तो प्रधानता है।

यदि कोई यह शंका करे कि ईश्वर ने कानून तो बना दिया, पर वह अब कुछ नहीं करता और न आगे करने की आवश्यकता है। प्रत्येक कार्य उस ही नियम के अनुसार होता चला आ रहा है। और
आगे भी होता रहेगा, तो क्या हानि ? इसका उत्तर यह है कि कानून स्वयं कुछ नहीं कर सकता जब तक कि चेतनकर्ता उसको अमल में न लाते, जैसे कि ताजीरात हिन्द किसी अपराधो का कुछ नहीं कर सकती, जब तक कि पुलिस उसको पकड़ कर जज के सामने पेश न करे और जज उसको उसके अपराध के अनुसार दण्ड न देदे । इसी प्रकार परमात्मा का कानून भी ईश्वर के स्वयं अमल में लाए बिना कुछ नहीं कर सकता।

जो ईश्वर को कानून का बनाने वाला तो मानता है लेकिन चलाने वाला नहीं मानते, उनको यह विचारना चाहिए कि जिस बुद्धि ने कानून का निर्माण किया है, वह ही बुद्धि उसको चला सकती है। प्रकृति जड़ होने से स्वयं न कोई कानून (नियम) बना सकती है और न किसी के बनाये नियम पर स्वयं स्वतन्त्रता से चल सकती है। जीवात्मा भी अल्पज्ञ होने से बिना ईश्वर से शरीर तथा ज्ञान प्राप्त किए न कोई नियम बना सकता है, न चल तथा चला सकता है। जीवात्मा इस प्रकार की ईश्वरीय सहायता प्राप्त करके भी, जो नियम बनाता या चलाता है, उसको भी वह अन्य पुरुषों की सहायता से ही कार्यरूप में परिणत करता है। कई स्थानों पर स्वयं अल्पज्ञ और अल्पशक्ति होने के कारण, अपनी इच्छा के विरुद्ध फल की प्राप्ति और असफलता का पात्र बनता है। जैसे आपने देखा होगा कभी-कभी बिना किसी इच्छा के स्वयं ठोकर लग जाती है तथा भोजन करते समय दांतों के तले जीभ कटकर कष्ट देती है। जिससे कि यह सिद्ध है कि कभी-कभी जीवात्मा अपने शरीर पर भी पूर्ण अधिकार नहीं रख पाता। पर परमात्मा सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् होने के कारण इकला ही सब नियमों को बनाता और स्वयं उन्हें चलाता है, यह हममें और परमात्मा में भेद है।

अब प्रश्न उठता है कि ईश्वर की आज्ञा कौन सी मानी जाय ? मुसलमान भाई कहते हैं कि कुरान ईश्वर का हुक्म है। ईसाई भाई बाईबिल को खुदा की पुस्तक बतलाते हैं, इस ही तरह अन्य मजहब भी। परन्तु इन सबको पुस्तकों में परस्पर भेद और विरोध होने के कारण सबकों ईश्वर की आज्ञा नहीं कहा जा सकता।

ईश्वर आज्ञा वह ही हो सकती है जो ईश्वर की भांति सार्वभौम हो, एकदेशी न हो । अर्थात् सब मनुष्यों के लिए हितकर हो, किसी विशेष देश या जाति का पक्षपात न हो तथा उसके दया, न्यायादि गुणों के विरुद्ध न हो, अर्थात् वेदानुकूल हो।

पक्षपात रहित न्याय - यह बहुत कम देखा जाता है कि मनुष्य न्याय करे और वह पक्षपात रहित हो । मनुष्य अल्पज्ञ और अल्पशक्तिमान होने के कारण कई दोषों से युक्त होता है । धन का लालच, रिश्तेदारी मित्रता, दूसरे का भय और मोह आदि उसको पूर्ण न्याय नहीं करने देते। ईश्वर इन त्रुटियों से रहित होने के कारण पक्षपात रहित न्याय करता है । अतः जो पुरुष ईश्वरीय गुणों के अनुकूल अपने गुण बनाकर संसार में कार्य करता और अपने जीवन को व्यतीत करता है वह एक समय पूर्वोक्त सम्पूर्ण दोषों से युक्त होकर पक्ष-पापरहित न्याय करने लग जाता है। पक्षपाती पुरुष अपना दायरा अत्यन्त संकुचित रखता है। यह केवल अपने में या जिसके साथ वह पक्षपात करता है, उस ही तक सीमित रहता है। परन्तु पक्षपात रहित कर्म करने वाला यजुर्वेद के -

यस्तु सर्वाणि
भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि
चिकित्सति।।
(यजु० ४० मन्त्र ६)

अनुसार अपने को सब प्राणियों में और सब प्राणियों को अपने में समझता है । एक देशी जीवात्मा के लिए यह असम्भव है कि वह ईश्वर की तरह सब वस्तुओं में व्याप्त हो जाय । उसके लिए एक यह ही प्रकार है कि वह अपने को "सर्वप्रिय" "सर्वहितकारी" बना सके, यह ही इसकी सर्वव्यापकता है।

सर्वहित - जिस न्याय में किसी का अहित न हो, वह पक्षपात रहित न्याय है। इसका दूसरा नाम सर्वहित है । ईश्वर इतना गम्भीर है कि दिन-रात सबका न्याय करता हुआ भी प्रत्येक जीव के हित को लक्ष्य से रख एक जीव के बुरे कर्मों को दूसरे पर प्रकट नहीं करता, चूकि वह जानता है कि बुराई के छुड़ाने में ऐसी बात साधक नहीं होती, अपितु बाधक होती है । जो जीव धर्म का आचरण करना चाहे, उसको "सर्वहितकारी" अवश्य होना चाहिए । प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य एक दूसरे की निन्दा करने के लिए घर-घर मारे-मारे फिरते हैं और उनको तब तक चैन नहीं पड़ता, जब तक दस-बीस स्थानों पर किसी की निन्दा न कर आवें । परन्तु वे यह नहीं विचारते कि ऐसा करने से किसी का भी कोई हित नहीं होता, बल्कि अपनी ही आदत खराब होती है, और परस्पर रागद्वेष की वृद्धि होकर वैमनस्य बढ़ता है।

स्वार्थी पुरुष भी पूर्ण न्याय या सर्वहित नहीं कर सकता। वह अन्यों के लाभ की अपेक्षा स्वार्थ को अधिक मूल्यवान समझता है और दूसरे के बड़े-बड़े लाभ को अपने तुच्छ से तुच्छ लाभ पर कुर्बान कर देता है । बहुत से मतों के प्रवर्तकों ने अपने मान और प्रतिष्ठा के लिए अपनी न्यूनताओं (कमजोरियों) को भी अपने अनुयायियों का एक धार्मिक नियम बना दिया और कोम की आगे होने वाली उन्नति में एक जबर्दस्त रोड़ा अटकाया जिसके फलस्वरूप आज कुछ लोग "शारदा एक्ट" जैसे आवश्यक और अत्युपयोगी कानून को भी अपने मजहब के विरुद्ध मानकर उसका विरोध करते और कहते हैं कि हमारे पूर्वज इस प्रकार की कम उम्र वाली कन्याओं से शादी कर गये हैं, अतः यह कानून उनके विरुद्ध होगा, इसलिए हम नहीं मान सकते। इसके विरुद्ध ऋषि लोग ईश्वरभाव से प्रेरित हो तथा सर्वहित को लक्ष्य में रखकर जो कुछ कार्य कर गये, वह उन सम्पूर्ण दोषों से रहित था, जिनसे सामान्य पुरुष प्रायः शीघ्र मुक्त नहीं हो पाते।

प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरीक्षित - प्रत्यक्षादि प्रमाण जो आगे आयेंगे, उनकी व्याख्या वहां की जावेगी। यहां केवल यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी चीज के लिए परीक्षा द्वार बन्द नहीं। किसी भी काम को खूब सोच समझ और परीक्षा करके करना चाहिए । यदि हम उन परीक्षाओं में ठीक और यथार्थ उतरे, तो धर्म और यदि न उतरे तो उसे अधर्म (अकर्तव्य) समझना चाहिए। इसलिए कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म का स्वयं उत्तरदाता हो, स्वयं परीक्षा करके ही प्रत्येक कार्य को करने की आज्ञा दी गई है। चाहे रेलवे का प्रबन्ध इन्जीनियरिंग के अधीन रखा गया है ओर आदमी दिन रात लाइन ओर पुलों की देखभाल करते रहते हैं, पर फिर भी ड्राइवर को सर्च लाइट और अपनी आंखों से देखकर चलाने की आज्ञा दी जाती है ताकि उसका वैयक्तिक उत्तरदायित्व उसके कार्य के साथ रहे।

वेदोक्त - वेद जो कि "विद् सत्तायाम, विद ज्ञाने, विद विचारणे" तथा "विदललाभे" इन धातुओं से सिद्ध होता है जिनका अर्थ हुआ कि जो सत्ता ज्ञान विचार और लाभ के सहित हो अर्थात् सर्वप्रथम वेद द्वारा हमें प्रत्येक वस्तु की सत्ता का उपदेश होता है, तत्पश्चात उन वस्तुओं तथा उनके गुण और व्यवहारादि का ज्ञान होता है । ज्ञान होने के अनन्तर ही हम उसके सूक्ष्म विषयों पर विचार करने में समर्थ हो पाते हैं, अन्त में इसी क्रम से हमें उस ज्ञान और विचार के अनरूप लाभ की प्राप्ति होती है। इस प्रकार उस वेद से उपदिष्ट कर्मों को जो कि मोटे शब्दों में ज्ञानानुकूल और विचार पूर्वक हों उन्हें धर्म कहा जाता है । इस ही लिए महात्मा मनु ने अपनी स्मृति में- "वेदोअखिलो धर्म मूलम्" तथा "धर्म जिज्ञासासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः" कहा अतएव प्रत्येक व्यक्ति को इस प्रकर के वेदोक्त कर्मों को करना ही अपना धर्म समझना और उसका अनुष्ठान करना चाहिए।

अधर्म - जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा को छोड़कर और पक्षपात सहित अन्यायी होकर बिना परीक्षा करके अपना हित करना है जो अविद्या, हठ, अभिमान, क्रूरतादि दोषों से युक्त होने के कारण वेद विद्या से विरुद्ध है और सब मनुष्यों को छोड़ने के योग्य है, वह अधर्म कहाता है।

यद्यपि किसी विशेष व्याख्या की आवश्यकता नहीं चूकि धर्म समझ लेने के बाद सिर्फ इतना विशेष याद रखना चाहिए कि जो धर्म से विपरीत अर्थात उल्टा हो उसे अधर्म कहते हैं। ऋषि दयानन्द ने मत-मतान्तरों को इसी कसौटी पर कस उन्हें मत-मतान्तर के नाम से निर्देश किया या मजहब बतलाया। चूकि उन सम्पूर्ण मजहबों में जो कि अपने को धर्म के नाम से पुकारते थे, उपयुंक्त दोष थे, जैसे कोई ईश्वर की सत्ता को ही न मानते थे, अर्थात् नास्तिक थे। जब वे ईश्वर ही को न मानते थे तो फिर ईश्वर की आज्ञा को ही कैसे मानते । लिहाजा ऋषि ने उन्हें भी कहा कि तुम्हारा मत धर्म नहीं कहा जा सकता कि वह धर्म के एक आवश्यक अंग से रहित है, अतः वह मजहब है। इस ही प्रकार जो लोग ईश्वर की सत्ता को मानते थे पर उसको आज्ञाओं में पक्ष-पात मानकर किसी एक देश या जाति के लोगों से पक्षपात या प्रेम और दूसरों से नफरत प्रकट करते थे, या ईश्वर के नाम पर यज्ञों में अथवा देवो-देवताओं के सामने पशु हत्या आदि करके अपनी क्रूरता और मूर्ति पूजा आदि करके जड़ में चेतना को मानकर अपनी अविद्याप्रियता का परिचय देते थे, उन्हें तथा जिनके ग्रन्थों में निरी असम्भव और विश्वास न करने लायक बातें भरी पाई, ऋषि ने कहा कि तुम्हारा मत भी सिर्फ मत यानी मजहब है । वह धर्म का स्थान नहीं ले सकता । इसीलिए वह सम्पूर्ण मनुष्य के लिए मान्य न होकर सिर्फ तुम लोगों ही की स्वार्थ पूर्ति के लिए हो सकता है । अतः प्रत्येक समझदार मनुष्य को इस प्रकार मजहबों या मत-मतान्तरों को दूर से ही प्रणाम करके छोड देना चाहिए जिससे कि उसका जीवन व्यर्थ बर्बाद न हो।

रामचन्द्र जी का अद्भुत दर्शन

(मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी के अयोध्या के राम मंदिर के उद्घाटन के अवसर पर विशेष रूप से प्रकाशित)

-प्रियांशु सेठ

रामचन्द्र जी ईश्वर के भक्त, वेदों के विद्वान्, सभी में प्रिय, सत्यवादी, कर्मशील, आदर्श, आज्ञाकारी, वचन के दृढ़ आदि सभी शस्त्र विद्याओं में निपुण व्यक्ति थें। उनके राज्य में कोई भी व्यक्ति दुःखी नहीं, कोई नारी विधवा नहीं, कहीं अकाल नहीं, कहीं चोरी, द्यूत आदि नहीं होता था। कुछ लोग रामचन्द्र जी के बारे में पूर्ण रूप से उनका व्यक्तित्त्व न जानकर और विशेष दूसरे सम्प्रदाय के लोग उनपर आक्षेप करते हैं जिसमें मुख्य यह प्रचलन में है कि रामचन्द्र जी मांस का सेवन करते थे चूंकि वाल्मीकि रामायण पढ़ने से किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहता कि रामचन्द्र जी का व्यवहार कैसा था, वह किस जाति के थे, वह मांस का सेवन करते थे वा नहीं आदि? समस्त वेद शास्त्र के मानने वाले एक मत होकर कहते हैं कि वह सूर्यवंशी कुल में प्रसिद्ध राजर्षि थे। उनका समस्त जीवन हमें उपदेश दे रहा है कि वह आर्य जाति के शिरोमणि और वैदिक धर्म के मानने वाले वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् और पुरुषार्थयुक्त व्यक्ति थें। उनका धर्म हमें रामायण के इस एक ही श्लोक से पूरा हो जाता है-

रक्षितास्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
वेद वेदांग तत्वज्ञो धनुर्वेद च निष्ठितः।।
-वाल्मीकि रामायण सर्ग १/१४

अपने धर्म की रक्षा करने और प्रजा पालने में तत्पर, वेद वेदांग तत्व ज्ञाता, धनुर्वेद में निष्णात थे।

वह स्वभार्या के प्रिय, प्रजा के दुःख दूर करने वाले, भाइयों को हृदय से प्रिय, माता पिता के आज्ञाकारी पुत्र थें। वचन के दृढ़, सत्यवादी, शरीरों, राक्षसों, मांसा-हारियों के शत्रु और ऋषियों की सच्चे हृदय से सेवा में तत्पर थे। जैसा कि रामायण अयोध्याकाण्ड १८/३० में तथा कई अन्य स्थानों पर इस बात को अच्छे प्रकार प्रगट किया है। बालकाण्ड में भी लिखा है-

धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजानां च हितेरतः।
यशस्वी ज्ञान संपन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्।।१२।।
प्रजापति समः श्रीमान्धाता रिपुनिषूदनः।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता।।१३।।
सर्व शास्त्रार्थ तत्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभावान्।
सर्वलोक प्रियः साधुरदोनात्मा विचक्षणः।।१५।।
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्रइव सिन्धुभिः।
आर्यः सर्वसमश्चौव सदैव प्रिय दर्शनः।।१६।।
-बालकाण्ड १/१२,१३,१५,१६

धर्मज्ञ, सत्य प्रतिज्ञा, प्रजा हितरत, यशस्वी, ज्ञान सम्पन्न, शुचि तथा भक्ति तत्पर हैं। शरणागत रक्षक, प्रजापति समान प्रजा पालक, तेजस्वी, सर्वश्रेष्ठ गुणधारक, रिपु विनाशक, सर्व जीवों की रक्षा करने वाले, धर्म के रक्षक, सर्व शास्त्रार्थ के तत्ववेत्ता, स्मृतिमान्, प्रतिभावान् तेजस्वी, सब लोगों के प्रिय, परम साधु, प्रसन्न चित्त, महा पंडित, विद्वानों, विज्ञान वेत्ताओं तथा निर्धनों के रक्षक, विद्वानों की आदर करनेवाले जैसे समुद्र में सब नदियों की पहुंच होती है वैसे ही सज्जनों की वहां पहुंच होती है। परम श्रेष्ठ, हंस मुख, दुःख सुख के सहन कर्ता, प्रिय दर्शन, सर्व गुणयुक्त और सच्चे आर्य पुरूष थे।

आनुशंस्यतनु कोशः श्रुतंशीलं दमः शमः।
राघव शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरूषर्षभम्।।
-अयोध्याकाण्ड ३३/१२

अहिंसा, दया, वेदादि सकल शास्त्रों में अभ्यास, सत्य स्वभाव, इन्द्रिय दमन करना, शान्त चित्त रहना, यह छे गुण राघव (रामचन्द्र) को शोभा देते हैं।

रामचन्द्र जी ने कौशल्या माता को वचन भी दिया था कि "हे माता? मैं १४ वर्ष तक वन में मुनियों की भांति कंदमूल और फलों से अपना जीवन निर्वाह करूंगा न कि मांस से (क्योंकि वह राजसीय भोजन है)।"
-अयोध्याकाण्ड सर्ग २०/२९

जब भरत जी रामचन्द्र जी से चित्रकूट में मिलने आए तब उस समय रामचन्द्र जी ने उनको अथर्व काण्ड ६ मन्त्र १ तथा मनु ७/५० आदि के अनुसार आखेट, द्यूत, मद्यपान, दुराचारादि बातों का निषेध का अनमोल उपदेश दिया हैं, यह बड़े ही मार्मिक एवं प्रशंसा के योग्य हैं।

जिसका इतना आदर्श भरा चरित्र हो भला वह महापुरुष मांस का सेवन कैसे कर सकता है? "अधजल गगरी छलकत जाए" यह कहावत इन आक्षेप करने वाले अज्ञानियों, मूर्खों पर सटीक बैठती है। वह केवल अर्थों का तोड़-मरोड़कर साधारण लोगों को मूर्ख बनाते हैं एवं अपने धर्म में

उन्हें सम्मिलित करना चाहते हैं। यहां मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र पर लगे विभिन्न आक्षेपों का क्रमबद्ध खण्डन किया जा रहा है-

शंका १. रामचन्द्र जी मृग मारने के लिए गए और पीछे रावण सीता को ले गया। इससे प्रगट है कि वह हिरण मारकर अवश्य खाया करते थे।

समाधान- इस स्थान अथवा अन्य किसी स्थान पर मृग को खाने के लिए मारने का कोई वर्णन नहीं। किन्तु स्वर्णरूप हिरण देखकर सीता का मन ललचाया। वह उसके रूप पर मुग्ध हो गईं और रामचन्द्र को उसके पकड़ने के लिए प्रार्थना की। उसके हठ के कारण पहले राम पुनः लक्ष्मण दोनों गए और जब पकड़ा तो ज्ञात हुआ कि वह छल था, वास्तविक हिरण न था। मारीच नाम का एक दैत्य या असभ्य जंगली मनुष्य हिरण का स्वांग धारण कर व खाल ओढ़कर भरमाने आया था। जिससे पीछे रावण सीता को भगा ले जाने में सफल हो पाया।

शंका २. रामचन्द्र जी ने वनवास के समय सूत से कहा कि हम नहीं जानते कि अब पुनः कब सरयू के तट पर पुष्पित वन में शिकार खेलेंगे और अपने माता-पिता से मिलेंगे।
-अयोध्याकाण्ड ४९/१५

समाधान- शिकार खेलना सर्वथा बुरा नहीं है और विशेष करके उस समय जब दुष्ट पशुओं, सिंह, भेड़िया आदि का मारना प्रयोजन हो।

शंका ३. सीता ने यमुना से पार उतरते समय मांस और मद्य के घड़े उसमें डालने के वचन से नदी से प्रार्थना की कि यदि मेरा पति सुखपूर्वक घर लौटे तो मैं ऐसा करूंगी।

समाधान- यह बात कई कारणों से मिथ्या ही कहलाएगी-

प्रथम कारणः- यमुना अथवा गंगा दोनों नदियां जड़ हैं। उनकी पूजा इन पदार्थों से कदापि नहीं हो सकती। इसको वह ही माने जिसको चेतन अथवा इस जड़ पूजा और नदी पूजा मानता हो अर्थात् मूर्ख।

द्वितीय कारणः- जब सीता वापिस आयीं तो यह वचन कदापि पूर्ण नहीं किया गया। इसलिए भी मिथ्या है कि किसी मद्यमांस के आसक्त वाममार्गी ने यह लोक डाल दिये हैं। वास्तव में यह कोई घटना है ही नहीं केवल कल्पित कहानियां मिला दी गयी हैं।

तृतीय कारणः- इस लोक में मांस शब्द नहीं है और न किसी पशु के मारने का उल्लेख है किन्तु लोक में तो गो सहस्रेण सुरा घट शतेन लिखा है।

-अयोध्याकाण्ड ५५/१९/२०

अतः मांस का इससे कोई सम्बन्ध ही नहीं। अब शेष रह गयी सुरा की बात तो इसका खण्डन राम-लक्ष्मण के बचनों से स्वयं सिद्ध है जैसा कि एक बार सुग्रोव ने मद्य पान किया तो राम लक्ष्मण ने उसे वहां बहुत ही बुरा कहा। भरत जी ने भी स्वयं शपथों में इसका खंडन किया है। अतः यह घटना कदापि घटित नहीं हुई।

शंका ४. जब रामचन्द्र जी चित्रकूट में पहुँचे तो झोपड़ी बना कर लक्ष्मण को आज्ञा दी कि हिरण को मारकर लावे जिससे यज्ञ किया जाए। लक्ष्मण जी इस आज्ञानुसार हिरण मार कर लाये जिससे यज्ञ किया और पकाया गया।

-मांस प्रचार पृष्ठ ५६

समाधान- वहां तो ऐसा नहीं इसके विरुद्ध लिखा है। हे लक्ष्मण? एक मृग पकड़ लाओ। उसको पर्णशाला (कुटिया) के द्वार पर बांधेंगे। तब वास्तव की पूजा करेंगे। क्योंकि जो लोग बहुत दिन जीना चाहते हैं उन को चाहिए कि बिना वास्तव की पूजा के उस में न रहें। -अयोध्याकाण्ड ५६/२२

हे लक्ष्मण? इससे अति शीघ्र मृग लाओ। सन्ध्या न होने पावे।

पश्चात् हे लक्ष्मण? इस मृग के खाने हेतु फल लाओ, अति शीघ्रता कीजिये क्योंकि ध्रुव मुहूर्त है। -अयोध्याकाण्ड ५६/२५

इस सर्ग में स्पष्ट वर्णन है कि उस स्थान पर फलमूल कंद बहुत अधिक हैं।

-अयोध्याकाण्ड ५६/६-१४

नोटः- (१) उनका ऐसा करना ऋषि-मुनियों एवं सूत्रकारों के विरुद्ध है। (२) हवन की अग्नि में मांस कदापि न डालना चाहिए। आश्वलायन ऋषि कहते हैं हवन की सामग्री में मांस नहीं है।

शंका ५. रामचन्द्र जी ने बिना अपराध हिरणों और राक्षसों को क्यों मारा?

समाधान- ऐसा कदापि नहीं। किसी को अपराध के बिना नहीं मारा। स्वयं रामायण में इसका कारण भी लिखा है कि "ऋषियों ने रामचन्द्र जी को कहा कि कुछ बात बनावट की नहीं कहते। आप यहां पधारें और देखें कि महात्मा मुनियों के अस्थि-पंजर पड़े हैं जिनको राक्षसों और जंगली लोगों ने मार मार कर भक्षण कर लिया है। प्रायः जो मुनि लोग पम्पा नदी से लेकर मन्दाकिनी के तट तक के वनों में निवास कर रहे हैं और जो चित्रकूट पर्वत पर निवास करते हैं उन्हीं लोगों का नाश यह राक्षस लोग करते हैं।" अरण्यकाण्ड सर्ग ६/१६-१७

इसी लिए रामचन्द्र जी ने इन दुष्टों का मारने का संकल्प लिया।

नोटः- यह बात किसी संस्कृत ज्ञाता से छिपी नहीं है कि मृग के अर्थ समस्त वनस्थ पशु हैं केवल हिरण नहीं किन्तु सिंह, भेड़िया आदि सब इसमें शामिल हैं। रामायण में जहां राक्षसों का वर्णन लिखा है वहां यह भी स्पष्ट लिखा है कि यह मांसाहारी लोग थें।

लगभग दो तीन सौ स्थानों पर रामायण में मांसाहारी को राक्षस लिखा गया है। स्वयं रावण के सम्बन्ध में भी ऐसा लिखा है। -(देखिए युद्धकाण्ड)

उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर यह स्पष्ट है कि रामचन्द्र जी मांस खाना नहीं अपितु मांस निषेध करते थे। यह विधर्मी केवल हमारे महापुरुषों पर तरह-तरह के कल्पित आक्षेप कर अपने धर्म का प्रचार करते हैं।

आइये आज रामनवमी के दिवस पर हम मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी को अपना आदर्श मानते हुए यह संकल्प लें कि हम भी उनके जैसा श्रेष्ठ बनने का प्रयत्न करेंगे, कभी भी अपने जीवन में चोरी, छल, ईर्ष्या, मांस-मंदिर का सेवन, द्यूत (जुआ) आदि कुकर्मों का साथ छोड़ सन्मार्ग की ओर बढ़ेंगे एवं अन्यों को भी इसी पथ पर चलने की ओर प्रेरित करेंगे।

आज्ञाकारी, स्थितप्रज्ञ, सत्यवादी, आर्यश्रेष्ठ, "मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचंद्र जी" के अयोध्या राम मंदिर के उद्घाटन के ऐतिहासिक अवसर पर आप सभी को हार्दिक शुभकामनाएं!

●●●

पृष्ठ ३ का शेष.....

मनुष्य की आत्मा का अस्तित्व मृत्यु या शरीर के नष्ट होने के पश्चात् भी बना रहता है और द्वितीय यह है कि मनुष्यों की आत्माओं के अतिरिक्त शक्तिशाली देवताओं की अन्य आत्माएँ भी होती हैं। टायलर के अनुसार आत्माएँ प्रेतात्माओं से लेकर शक्तिशाली देवताओं की श्रेणी तक की होती हैं। ये पारलौकिक आत्माएँ केवल अमर ही नहीं हैं, वरन् वे इस भौतिक संसार की सभी घटनाओं तथा मनुष्यों के जीवन की दिशा को भी नियन्त्रित व निर्देशित करती हैं। इसके अतिरिक्त, इन आत्माओं को प्रसन्न रखने से मनुष्य को लाभ और इसके अप्रसन्न होने पर हानि हो सकती है। इसीलिए इनकी विनती या आराधना करना आवश्यक है, जिससे वे हमारा अनिष्ट न करें। इसी विश्वास को लेकर आदिम मनुष्यों ने पितरों आदि की विनती और आराधना प्रारम्भ की, और यही आगे चलकर धर्म के रूप में विकसित हुई।

२. धर्म की उत्पत्ति के मैक्स मूलर का प्रकृतिवाद

मैक्स मूलर के अनुसार प्रकृति के विभिन्न रूपों को देखकर आदिकाल में मानव के मन में भय, आतंक, आश्चर्य आदि होना स्वाभाविक ही था। इन मानसिक भावनाओं के कारण वह प्रकृति से ऐसे डरने लगा, जैसे किसी प्राणी से डरता हो और इसीलिए उसके प्रति उनके दिल में श्रद्धा, भक्ति आदि की भावनाएँ आईं। इसी के आधार पर संस्कृति और भाषाशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् मैक्स मूलर ने यह निष्कर्ष निकाला कि धर्म की उत्पत्ति का प्रथम चरण प्रकृति के विभिन्न पदार्थों जैसे सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु आदि की आराधना थी। मिस्र में तथा अन्यत्र हुई खुदाइयों से इस विचार को पुष्टि मिली। मिस्र में सबसे बड़ा देवता 'रा' अर्थात् सूर्य था। यह कहा जाता है कि प्रकृति के विभिन्न पदार्थों को सजीव समझना और उनके प्रति श्रद्धा, प्रेम या भय की भावना का जन्म दोषपूर्ण भाषा के कारण हुआ। प्रायः यह कहा जाता है कि सूर्य उदय या अस्त होता है', 'आँधी चल रही है', इत्यादि। परन्तु वास्तव में सूर्य न तो उदय ही होता है और न अस्त ही होता है। कुछ भी हो, आदि मानव प्रकृति की इस विशालता के सम्मुख नतमस्तक होता है और धर्म की प्रथम नींव पड़ती है।

३. धर्म की उत्पत्ति के फ्रेजर का सिद्धांत–

फ्रेजर के मतानुसार सर्वप्रथम आदिम मनुष्यों ने जादू-टोने (magic) के द्वारा प्रकृति पर नियन्त्रण करके अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने का प्रयत्न किया और असफल होने पर यह मान लिया कि 'संसार' में उनसे भी कोई अधिक शक्तिशाली है जो उनके प्रयत्नों को व्यर्थ करता है और इस कारण उस शक्ति पर जादू-टोने के द्वारा शासन करना कदापि सम्भव नहीं। इस धारणा के फलस्वरूप ही वह उस शक्ति पर शासन करने की इच्छा त्यागकर उसकी आराधना करने लगा और इसी से धर्म की उत्पत्ति हुई। संक्षेप में, फ्रेजर के अनुसार धर्म की प्राथमिक अवस्था (initial primacy) जादू-टोना था। जादू-टोने से निराश होकर ही लोगों ने धर्म की शरण ली थी। इस प्रकार धर्म प्रकृति के द्वारा पराजित मनोवृत्ति का ही परिणाम है।

४. धर्म की उत्पत्ति के दुर्खीम का सिद्धांत–

दुर्खीम ने अनेक विद्वानों की कमियों का उल्लेख करते हुए धर्म की उत्पत्ति के संबंध में एक सम्पूर्ण सामाजिक व्याख्या को प्रस्तुत किया। आपके अनुसार 'समाज' ही धर्म की उत्पत्ति का मूल कारण है। धर्म 'समाज' की ही प्रतिछाया है।

दुर्खीम के मतानुसार सामूहिक जीवन की समस्त वस्तुओं को, चाहे वे सरल हों या जटिल, वास्तविक हों या आदर्शात्मक, दो प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है- (१) साधारण, (२) पवित्र। समस्त धर्म का संबंध पवित्र वस्तुओं से होता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी पवित्र वस्तुएँ ईश्वरीय या धर्म से संबंधित होती हैं, यद्यपि धर्म-संबंधी प्रत्येक वस्तु या विचार पवित्र अवश्य ही होते हैं। ये पवित्र वस्तुएँ समाज की प्रतीक या सामुदायिक प्रतिनिधि हैं। आदिम समाजों में व्यक्ति सामूहिक शक्ति के सम्मुख अपनी शक्ति को सर्वथा अर्थहीन पाता है और इसीलिए उसके सम्मुख नतमस्तक होता है। यह सामूहिक शक्ति सार्वजनिक संस्कारों तथा उत्सव आदि के समय अनुभव की जाती है। इस सामूहिक शक्ति को आदिम मानव पवित्र मानता है और इसी कारण उससे प्रभावित रहता है। समाज के लोग जिन्हें पवित्र समझते हैं उन्हें अपवित्र और साधारण से सदा दूर बचाकर रखने का प्रयत्न करते हैं और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे अनेक विश्वासों, आचरणों, संस्कारों और उत्सवों को जन्म देते हैं। धर्म इन्हीं प्रयत्नों का फल है। चूँकि इन प्रयत्नों से संबंधित विश्वासों, आचरणों संस्कारों आदि के पीछे समस्त समाज की अभिमति और दबाव होता है इस कारण समाज की उस सामूहिक सत्ता के समक्ष मनुष्य को नतमस्तक होना पड़ता है। धर्म की नींव वहीं से पड़ती है। यदि सूक्ष्म रूप से विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट होगा कि धर्म की उत्पत्ति किसी एक विशेष कारण से नहीं हुई, इसकी उत्पत्ति में तो एकाधिक कारणों का योगदान रहा है।

१. पवित्रता की भावना- दुर्खीम ने इस तथ्य पर विशेष बल दिया कि धर्म का संबंध उन सभी विश्वासों, वस्तुओं और आचरणों से होता है जिन्हें पवित्र माना जाता है। यही कारण है कि धर्म से संबंधित सभी वस्तुओं और क्रियाओं को अपवित्र वस्तुओं और अपवित्र आचरणों से अलग रखा जाता है। पवित्रता की यही धारणा उन सभी व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बाँधती है जो समान धार्मिक विश्वासों में आस्था रखते हैं।

२. **तर्क का अभाव–** धर्म का संबंध अलौकिक विश्वासों से होने के कारण इन्हें किसी परीक्षण अथवा वैज्ञानिक ज्ञान के द्वारा प्रमाणित नहीं किया जा सकता। विश्वास ही धर्म की नींव है। यही कारण है कि धर्म का संबंध मानव जीवन के तार्किक पक्ष से न होकर भावनात्मक पक्ष से होता है।

३. **नियमों व निषेधो का समावेश–** प्रत्येक धर्म में व्यवहार के कुछ विशेष नियमों का समावेश होता है। यह नियम पवित्रता, ईमानदारी, दया, न्याय, त्याग तथा सत्यता से संबंधित होते हैं। धार्मिक नियम यह स्पष्ट करते हैं कि विभिन्न दशाओं में व्यक्ति को किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए। निषेध का तात्पर्य उन नियमों से है जो व्यक्ति को छल, कपट, अनैतिकता, बेईमानी और दुराचरण से रोकते हैं। व्यक्तियों के व्यवहारों को नियन्त्रित करने में इन नियमों और निषेधों की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

४. **धार्मिक संस्तरण–** संसार के सभी धर्मों में विभिन्न व्यक्तियों के बीच उच्चता और निम्नता का एक स्पष्ट संस्तरण होता है। इस संस्तरण में उन व्यक्तियों को सर्वोच्च स्थान मिलता है जिन्हें अपने धर्म का विशेष ज्ञान होता है। धर्माचार्य, पोप, इमाम तथा ओझा आदि इसी श्रेणी के व्यक्ति हैं। इन धार्मिक प्रतिनिधियों के समीप रहने वाले व्यक्तियों का धार्मिक संस्तरण में दूसरा स्थान होता है। धार्मिक नियमों के अनुसार संयमपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले लोगों को तीसरा स्थान मिलता है। इस संस्तरण में वे व्यक्ति सबसे नीचे होते हैं जिन्हें या तो पवित्र नहीं समझा जाता अथवा जिनका धर्म में कोई विश्वास नहीं होता।

धर्म की उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर (Anderson) ने यह निष्कर्ष दिया है कि ''धर्म एक नैतिक-आध्यात्मिक संस्था अनेक विचारों, विश्वासों और उद्वेगों की एक संयुक्तता है जिसे किसी अलौकिक शक्ति के प्रति अभिव्यक्त किया जाता है।''

मानव जीवन में धर्म का महत्व

१९३३ में महात्मा गाँधी ने मानव जीवन में धर्म को एक महान शक्ति बताया है और कहा-''धर्म वह शक्ति है जो व्यक्ति का बड़े-बड़े संकट में ईमानदार बनाये रखती है और यह इस संसार में दूसरे में भी व्यक्ति की आशा का अन्तिम सहारा है।'' मानव जीवन में धर्म के निम्न कार्य बताये जा सकते है-

१. धर्म व्यक्ति का व्यक्तित्व एवं अस्तित्व को सुनिश्चित करता है।

२. धर्म जीवन को आधार प्रदान करता है।

३. यह मानव मस्तिष्क को शान्ति देता है और हृदय में आशा का संचार करता है।

४. धर्म मानव जीवन कों मानसिक दृढ़ता प्रदान कर नैतिक रखता है।

५. यह मानव समूह को व्यवहारात्मक, विचारात्मक, परम्परात्मक एवं भावात्मक रूप से जोडें रहता है।

६. धर्म मनुष्य को संस्कृति एवं सभ्यता के निर्माण एवं निर्वाह का आधार प्रदान करता है।

७. यह व्यक्ति को परिवार, समाज एवं देश से जोडता रहता है।

८. धर्म ने मानव जीवन के सम्पूर्ण इतिहास को नया रूप देकर संजोया।

९. धर्म मनुष्य को अध्यात्मिकता एव नैतिकता का मार्ग दिखाता है।

१०. धर्म मनुष्य को वास्तविक जीवन की परिस्थितियों से संधर्ष करने की शक्ति का संचार करता है।

११. जीवन के अन्तिम सत्य (मोक्ष) को प्राप्त करने हेतु प्रथम सीढ़ी धर्म का ही है।

१२. धर्म व्यक्ति की भौतिक एंव आध्यात्मिक उन्नति को आधार प्रदान करता है। कहा भी गया है- यतो अभ्युदय-निश्श्रेयस सिद्धिः स धर्मः। (जिससे व्यक्ति की शारीरिक और आध्यात्मिक उन्नति हो वही धर्म है)

१३. मानव के सम्पूर्ण इतिहास पर धर्म की छाप है इसकी पुष्टि करते हुये गिर्स्बट ने लिखा है-''अमरीकी और फ्रान्सीसी क्रांन्तियों पर धर्म की छाप थी और ०९ जनवरी १९०५ तक रूसी क्रान्तियों पर भी प्रबल धर्मिक प्रभाव था। आधुनिक समय में महात्मागाँधी और आचार्य विनोबा भावे के नेतृत्व में होने वाले महान सामाजिक और आथिक आन्दोलनो का आधार धर्म है।''

हम संक्षेप में कह सकते है की धर्म एक सर्व व्यापक शक्ति है जो व्यक्ति और समाज को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है।

●●●

२५ दिवसीय चरित्र निर्माण शिविर का शुभारंभ

अपरा काशी के नाम से विख्यात भागीरथी के सुरम्य तट पर आयोजित मेला श्रीराम नगरिया पांचालघाट के वैदिक क्षेत्र में जिला आर्य प्रतिनिधि सभा फर्रुखाबाद एवं वेद प्रचार मण्डल आर्यावर्तूत के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित २५ दिवसीय चरित्र निर्माण शिविर का दिनांक १९ जनवरी, २०२५ को शुभारंभ देश की रक्षा के लिए तत्पर सेना के पूर्व जवानों एवं संतों की गरिमामयी उपस्थित में सम्पन्न हुआ। सूबेदार मेजर राकेश सिंह जादौन व आचार्य चंद्रदेव शास्त्री ने ध्वजारोहण किया। जिला सभा के मंत्री डॉ. शिवराम सिंह आर्य व डॉ. हरिदत्त द्विवेदी ने आये हुए अतिथियों का माल्यार्पण कर व स्मृति चिन्ह भेंट कर स्वागत किया। कार्यक्रम का संचालन मुन्ना यादव एडवोकेट ने किया। आचार्य चंद्रदेव शास्त्री ने कहा कि वर्तमान वर्ष में देश स्वामी दयानंद सरस्वती जी की २००वीं जयंती व आर्य समाज की स्थापना के १५०वें वर्ष को मना रहा है। इसलिए इस वर्ष का कार्यक्रम और भी भव्यता के साथ मनाया जाएगा। जिसमें देश के अनेक प्रान्तों से आर्य कार्यकर्ता, साधू सन्यासी व विद्वान अपने वेदोपदेश से कल्पवासियों के बीच वैदिक धर्म से संबंधित महत्वपूर्ण सत्संग व चर्चा करेंगे। शिविर में प्रतिदिन यज्ञ,योग व आध्यात्मिक ज्ञान की वर्षा के साथ-साथ सामाजिक विषयों पर आधारित विविध गोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन भी होगा। सम्मानित अतिथियों में आये हुए पूर्व सैनिकों ने महर्षि दयानंद व आर्य समाज के कार्यों की प्रसंसा की तथा समाज मे व्याप्त कुरीतियों व पाखण्डों के निवारण हेतु आर्य समाज के साथ मिलकर चलने का आवाहन किया। दोपहर की सभा मे आचार्य प्रदीप शास्त्री, शिवनारायण आर्य व धनीराम बेधड़क ने ईस्वर भक्ति के गीत सुनाकर श्रोताओं को भावविभोर किया। प्रातःकाल यज्ञ प. हरिओम शास्त्री ने सम्पन्न कराया। प्रथम दिवस के यज्ञ में कल्पवासियों ने श्रद्धापूर्वक आहुतियां प्रदान कर सुख संवृद्धि की कामना की। कार्यक्रम में अरविंद गिरी महाराज, महंत मकरंद भारती, महंत लखनपुरी, स्वामी चमन गिरी,सूबेदार के.के. यादव, दीप सिंह पूर्व हवलदार, शंभुदयाल जी, भूपेंद्र सिंह, विवेक सिंह, पूर्व हवलदार हरी सिंह आर्य, हवलदार विवेक सिंह राठौर, सूबेदार जितेंद्र सिंह राठौर, आर्येन्द्र पाण्डेय, हरिशंकर उपाध्याय,रत्नेश द्विवेदी,नीता कुशवाहा, उपासना कटियार, रेनू आर्या, उदिता आर्या, ऋतु आर्या आदि उपस्थित रहे।

तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा

के उद्घोषक नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस के १२९वें २३-०१-१८९७ जन्मदिवस पर उनके कुछ संस्मरण

–श्री कन्हैयालाल आर्य

(१) विद्रोही सुभाष कटक (उड़ीसा) का एक बंगाली सम्पन्न परिवार रायबहादुर जानकीनाथ प्रभावती जिसका पुत्र कटक के विद्यालय से शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् कलकत्ता के प्रेसीडैन्सी कालेज में प्रवेश लेता है, वहाँ पर एक अंग्रेज प्रोफेसर जो भारतीयों को हीन भावना से देखता था, ऐसे प्रोफेसर को एक देशप्रेमी छात्र का साहसपूर्ण उत्तर-

प्रोफेसर का नाम था सी. एफ. ओटन। इस प्रोफेसर ने एक भारतीय विद्यार्थी से कोई प्रश्न पूछा। वह छात्र ठीक से उत्तर नहीं दे पाया, क्योंकि उसने प्रश्न ठीक से नहीं सुना था। इतनी सी बात पर प्रोफेसर ने क्रोध में तड़ककर कहा- ''यू रास्कल'' (बदमाश)।

''सर मैं आपके प्रश्न को ठीक से समझ नहीं सका।'' छात्र ने विनम्रता से उत्तर दिया। ''यू ब्लैक मन्की (काले बन्दर) तू प्रश्न को ठीक से नहीं समझ सकता।'' प्रोफेसर ने विनम्रता का उत्तर जातीय गाली से दिया। कक्षा में बैठे एक देशभक्त छात्र को यह गाली सहन नहीं हुई। उसने आक्रोश भरे शब्दों में कहा, ''प्रोफेसर साहब, जरा सम्भल कर बोला कीजिए। पूरी कौम को गाली देना अनुचित है।'' प्रोफेसर ने और अधिक अहंकार में आकर एक और गाली देते हुए कहा, ''यू ब्लडी।'' उस छात्र के हृदय को इन अपमानजनक गालियों ने छलनी कर दिया। उसने उस अंग्रेज प्रोफेसर को कहा, ''हमारी आजादी छीनकर, हमें गुलाम बनाकर हमें गालियों से अपमानित भी करते हो।'' प्रोफेसर कक्षा से बाहर जाते-जाते कह गये, ''शटअप यू बास्टर्ड।'' बस इतना कहना था कि इस साहसी छात्र ने उस प्रोफेसर के मुँह पर जोरदार तमाचा जड़ दिया। प्रोफेसर के द्वारा प्रिन्सीपल को शिकायत किये जाने पर उस छात्र को कालेज से चाहे निकाल दिया गया हो, परन्तु यह तमाचा उस छात्र ने उस प्रोफेसर को नहीं बल्कि अंग्रेज सरकार के मुँह पर मारा था। वह छात्र अब विद्रोही बन गया था। वह छात्र था सुभाषचन्द्र बोस। ऐसे महामना को आज हम उनके १२९वें जन्मदिवस पर शत-शत नमन करते हैं।

इस घटना के पश्चात् विद्रोही सुभाष सोचने लगे कि अब तुम्हारा छात्र जीवन अन्धकारमय हो गया है, परन्तु उन्हें इस बात के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं था अपितु एक प्रकार का सन्तोष था कि जो भी किया, ठीक ही किया। यह तो आत्मसम्मान के लिए, एक पवित्र उद्देश्य के लिए किया गया त्याग था और त्याग से बढ़कर संसार में है ही क्या? उन्हीं के शब्दों में-

''मेरे प्रिन्सिपल ने मुझे कालेज से निकालकर मेरे साथ बहुत भलाई की। सन् १९१६ में घटी इस घटना ने मेरे अन्दर अजीब सा उत्साह और आत्मविश्वास भर दिया था। मैंने पहली बार अपने बलबूते पर एक कदम उठाया था और नेतृत्व की दिशा में यह मेरा पहला कदम था। मैंने थोपे हुए इस अवकाश का समय कटक में समाज सेवा और आत्मिक शिक्षा प्राप्त करने में उपयोग किया।''

वह आडम्बरों में विश्वास नहीं करते थे- सुभाष तीव्र स्वभाव के थे। अन्याय को सहन न करना उनका विशेष गुण था। आरम्भ से ही उनके विचार ऊँचे थे। उनका आडम्बरों में विश्वास नहीं था। उन्होंने एक बार कहा था, ''मुझे कृष्ण का वह रूप जो तीर्थों में पूज्य है, आकर्षित नहीं करता। मैं तो कृष्ण के उस स्वरूप का पुजारी हूँ, जो उन्होंने कुरुक्षेत्र के धर्मयुद्ध में दिखाया था।''

दुखियों के प्रति दया एवं धार्मिक जिज्ञासा से भरपूर राय बहादुर जानकीनाथ यह चाहते थे कि सुभाष एक बहुत बड़ा सरकारी अफसर बने, परन्तु बाल्यावस्था से ही सुभाष के विचार भिन्न थे। उनके हृदय में धार्मिक प्रवृत्ति के साथ साथ दुखियों के प्रति दया की भावना प्राथमिक रूप से विद्यमान थी। धनी परिवार में जन्म लेकर घर में पृथ्वी पर सोना, धोती-कुर्ता पहनना उनके त्याग को दर्शाता था। जब वे आठ वर्ष के थे तो भानपुर में बीमारी फैल गई। सुभाष बिना घर बताये वहाँ से चले गये और दो मास तक उन पीड़ित व्यक्तियों की सेवा करते रहे। इसी प्रकार वे जब १६ वर्ष के थे तो वे धार्मिक जिज्ञासा व साधुओं के श्रुत अलौकिक चरित्र को जानने के आकर्षण में घर छोड़कर ऋषिकेश, हरिद्वार, गया, मथुरा, वृन्दावन आदि स्थानों पर घूमते रहे।

आजादी के दीवाने का स्वागत खून की रोली से होना चाहिये एक सशस्त्र गोरे ने आगे बढ़कर पिंजड़े का लौहद्वार खोल दिया और जैसे ही बन्दी शेर (सुभाषचन्द्र बोस) सींखचों से बाहर आया, एक ओजपूर्ण कोलाहल धरती और आकाश को गुंजरित कर उठा ''इन्कलाब जिन्दाबाद, नेताजी जिन्दाबाद, आजादी अधिकार हमारा है।'' सिंह बड़ी निर्भीकता और गौरव के साथ आगे आगे चल रहा था और हर्षोल्लासित अपार जनसमूह गगनभेदी नारों के साथ उसका अनुसरण कर रहा था। जैसे ही नेता जी मंच पर उपस्थित हुए, वहाँ की उपस्थित जनता ने तुमुल हर्ष के साथ गगनभेदी नारा लगाया, ''जयहिन्द'' इसके साथ ही वहाँ पर सात्विक शान्ति छा गई। इसके साथ ही एक मधुर और श्रद्धासिक्त कण्ठ स्वर ने उस सात्विक शान्ति को भंग करते हुए कहा, ''वन्दे सुभाष दा

वन्दे'' यह मधुर स्वर किसी और का नहीं बल्कि सुभाष बोस की बालसखा कमला का था जो इस क्रान्तिदूत के अभिनन्दन के लिए मंच पर उपस्थित थी। क्रान्तिदूत के तेजस्वी मुखमण्डल पर गौरव अनुभूति की पवित्र मुस्कान थिरकी और उसके मुख से निकला, ''कमला...।'' उसी समय कमला ने गुलाब की सुगन्धित पुष्पों की एक माला क्रान्तिदूत के गले में डाल दी। यह क्रान्तिदूत के क्रान्तिप्रयाण का अभिनन्दन था। ज्यों ही इस क्रान्तिदूत के उन्नत ललाट पर रोली अंकित करने के लिए हाथ बढ़ाया, त्यों ही सुभाष बोस के मुख से निकला, ''मेरे विचार से आजादी के दीवाने का स्वागत खून की रोली से होना चाहिये...। कमला! वह क्षण कब आयेगा जब तुम खून की रोली से मेरे क्रान्ति प्रयाण का अभिनन्दन करोगी?''

कमला ने कहा, ''अभी इसी क्षण देव...।'' उसने उसी दम ब्लेड मंगाकर अपना अंगूठा चीर लिया। रक्त की गाढ़ी धारा छलक पड़ी।

''तुम धन्य हो देवी...। मैं तुम्हारी इस रक्त रोली को व्यर्थ नहीं जाने दूँगा।'' कहते हुए क्रान्तिदेवता ने उसके समक्ष अपना मस्तक नत कर दिया। वातावरण एक बार पुनः हर्षनाद से झंकृत हो उठा। नमन है आज उस देवी (कमला) सुभाष बोस की बालसखा को जिसने इस क्रान्तिदूत के मार्ग को और दृढ़ बना दिया।

मुझे कोई शारीरिक रोग नहीं है, यह समूचे देश का दर्द है- सुभाष की फटी-फटी आँखें समाचार पत्र पर टिकी थीं ऊपर ही मोटे-मोटे अक्षरों में छपा था जाजपुर में हैजे का भीषण प्रकोप और उसके नीचे हैजे से होने वाली क्षतियों का अत्यन्त मार्मिक शब्दों में वर्णन किया गया था। सुभाष की अन्तरात्मा इस समाचार को जानकर हाहाकार कर उठी। कोई इस भीषण काल से उनकी रक्षा करने वाला नहीं? क्या हमें इस दुःखद घटना को सुनकर भी चुप बैठे रहना चाहिये? यदि हाँ, तो हम मनुष्य होकर भी पशु से बदतर हैं।

इसी बीच बड़े स्नेह से पुकारती हुई उसकी बालसखा ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा, ''सुभाष दा, तुम्हारा नेचर मेरी समझ में नहीं आता, हर घड़ी गम्भीर बने रहते हो। तुम्हारे हृदय में कोई विशेष दर्द है।'' सुभाष ने उत्तर दिया, ''तू ठीक कहती है, कमला, सचमुच मेरे दिल में एक भयानक दर्द हो रहा है और मैं उस दर्द से छटपटा रहा हूँ।'' कमला इस उत्तर से बैचेन हो गई उसी समय सुभाष ने कहा, ''अरे, तू तो निरी बच्ची है। मेरा यह रोग कोई शारीरिक रोग नहीं है, यह तो समूचे देश का दर्द है, और सम्पूर्ण भारत की वेदना है। आज मेरे दुःख और चिन्ता का कारण जाजपुर में फैला भयंकर हैजा है, जो अनगिनत प्राणियों को मृत्यु का ग्रास बना रहा है।'' कमला ने कहा, ''तुम्हारी पीड़ा सही है, परन्तु हम ऐसी ऊँची भावनायें रखते हुए भी क्या कर सकते हैं?''

सुभाष ने उत्तर दिया, हम बहुत कुछ कर सकते हैं? मैं मानता हूँ कि मैं मनुष्य की शारीरिक व्याधि को अपने ऊपर नहीं ले सकता, किन्तु उस व्याधि को समाप्त करने में उनकी सेवा करके सहयोग कर सकता हूँ।'' कमला ने कहा, ''क्या रायबहादुर (आपके पिता) आपके इस कार्य से रुष्ट नहीं हो जायेंगे?'' सुभाष ने कहा, ''यह ठीक है कि वे मेरे इस कार्य से अपनी प्रतिष्ठा में हानि मानेंगे, परन्तु मैंने दृढ़ निश्चय कर रखा है कि मैं अवश्य उन रोगियों की सेवा के लिए जाऊँगा।''

कमला ने पुकार कर कहा, ''कम से कम आंटी (अर्थात् माता प्रभावती) से तो मिल लो...। तुमने खाना भी नहीं खाया होगा।'' ''चिन्ता न करो कमला, इस समय मुझे भूख-प्यास कुछ भी नहीं है।'' कहते हुए सुभाष आँखों से ओझल हो गये और कमला ठगी-सी खड़ी रह गई।

कई मास रोगियों की सेवा करने के पश्चात् घर लौटे और पिताजी के चरणों में अत्यन्त विनम्र भाव से प्रणाम करते हुए कहा, ''क्षमा कीजिये, पिता जी! मैं आपकी आज्ञा लिये बिना जाजपुर चला गया था।'' रायबहादुर जानकीदास ने गम्भीर स्वर में कहा, ''अब तो क्षमा का प्रश्न ही नहीं उठता, वैसे तुमने जो किया है वह सर्वथा मेरी प्रतिष्ठा के विरुद्ध है। तुम्हारा भविष्य अन्धकारमय है।'' सुभाष ने कहा, ''पिताजी! सेवा कार्य निन्दनीय तो नहीं होता।'' इसी बीच माता प्रभावती आ गई। सुभाष ने माँ के चरण स्पर्श किये। रायबहादुर ने कहा, ''तुम्हारी यही अन्धी ममता इसके ऊलजलूल कार्यों को प्रोत्साहन देती है।''

''तू कीर्तिमान हो मेरे लाल!'' माँ का गद्गद कण्ठ स्वर प्रस्फुटित हुआ, ''तेरी उच्च भाव अभिव्यक्ति ने मेरे ममता के अन्धकार को नष्ट कर दिया और बुद्धि का पट स्वच्छ हो गया है। वास्तव में मेरी कोख धन्य है जिसका बेटा मानव मात्र की व्यथा को दूर करने के लिए जन्मा हो। मुझे आज पूर्ण विश्वास हो गया है कि तेरा जन्म अपने लिए नहीं दूसरों की पीड़ा मुक्ति के लिए हुआ है। मेरी कोटि-कोटि शुभकामनाएँ और आशीष तेरे साथ रहेंगे। ईश्वर तेरे अनुष्ठान में कीर्ति और सफलता प्रदान करे।''

इधर माँ के आंखों से पुत्र के मिलन से अश्रु बरस रहे थे और उधर माँ के आँचल को पाकर सुभाष की आंखों से अश्रु बह रहे थे। इसी भावना में बहते हुए सुभाष ने कहा, ''मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ तेरी कोख से जन्म लेकर मैं स्वयं धन्य धन्य हूँ, माँ!'' इस प्रकार माँ-पुत्र का मिलन हर्ष अतिरेक में व्यतीत हो रहा था।

आई. सी. एस. की परीक्षा एवं सुभाष का निर्णय राजबहादुर जानकीनाथ सुभाष के कार्यों एवं व्यवहार से असन्तुष्ट दिखाई दे रहे थे। एक दिन सुभाष की माता श्रीमती प्रभावती ने अपने पति की स्थिति को देखकर कहा, ''मैं पिछले कुछ समय से ऐसा आभास कर रही हूँ कि आप मानसिक रूप से अशान्त हैं, इसका प्रभाव आपके स्वास्थ्य और व्यवहार पर पड़ रहा है।'' रायबहादुर जानकीनाथ से कहा, ''आप व्यर्थ में सुभाष के विषय में चिन्तित रहते हैं, वह एक महापुरुष है जो जन्म के साथ अद्भुत प्रतिभा लेकर आया है।'' जानकीनाथ ने कहा, ''प्रत्येक माँ अपने पुत्र के लिए ममतावश ऐसे ही विचार रखती है, परन्तु वह अत्यन्त हठी एवं दुस्साहसी है। यदि तुम यह चाहती हो कि मेरा मन शान्त हो जाये तुम इसे तैयार करो कि वह आई. सी. एस. की परीक्षा हेतु लन्दन जाये।'' माता प्रभावती अपने पति की जिद और अपने पुत्र की दृढ़ प्रतिज्ञा से परिचित थी और बैचेन रहने लगी। एक दिन माँ को दुःखी देखकर सुभाष ने कहा, ''क्या बात है माँ? तुम स्वस्थ नहीं लगती'' प्रभावती ने कहा, ''सुभाष तुम ठीक कहते हो। तुम्हारे पिता ने तुम्हें आई.सी.एस. की प्रतियोगिता में बैठने के लिए विलायत भेजने का निर्णय किया है।'' यह घोषणा सुभाष के लिए बिच्छु के डंक के समान थी। सुभाष ने कहा, ''पिताजी जी चाहते हैं कि मैं ब्रिटिश सरकार के अधीन उच्च अधिकारी बनकर अपने वास्तविक उद्देश्य से विमुख हो जाऊँ। माँ, मेरा जन्म एक विशेष उद्देश्य को पूरा करने के लिए हुआ है जो ब्रिटिश साम्राज्य की जी हजूरी करने से निष्फल हो

क्रमशः.....८ पर

पंजी०सं० आर.एन.आई.-२२४१/५७ -आर्यमित्र २३ जनवरी, २०२५ पोस्टल रजि.जी.पी.ओ. लखनऊ/एन.पी.-१४/२०१६-२१ एक प्रति ₹ ५.००

आर्य मित्र
नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०९४१२६७८५७१, मंत्री-०९४१५३६५५७६, सम्पादक-९४५१८८१९७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,

.....

.....

पृष्ठ ७ का शेष.....

जायेगा।"

पिताजी के इस निर्णय से सहमत न होता हुआ भी आई.सी.एस. की प्रतियोगिता में सम्मिलित होने के लिए सुभाष लन्दन के लिए प्रस्थान कर गया। वहाँ प्रतियोगिता की तैयारी को भी करता रहा, परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य को उखाड़ने के लिए भी योजनायें बनाता रहा।

प्रतिभाशाली सुभाष ने १९२० में आई.सी.एस. की परीक्षा में चौथा स्थान प्राप्त किया। माता-पिता, बन्धु बान्धव इस सफलता पर फूले नहीं समाये, किन्तु सुभाष का लक्ष्य आक्रान्ता अंग्रेजों की पराधीनता स्वीकार करना नहीं था, वे तो भारत को स्वतन्त्र कराना चाहते थे। उस समय आई.सी.एस. अधिकारी एक राजा के समान होते थे। सुभाष चाहते तो जीवन भर शाही ठाठ-बाट से जीवन जी सकते थे, किन्तु उन्होंने आई.सी.एस. से त्यागपत्र देकर सारे ठाठ-बाट को ठुकरा दिया। उस क्षण सब स्तब्ध रह गये, जब सुभाष की यह घोषणा प्रकाशित हुई, जिसके अर्न्तगत उन्होंने भारत के तत्कालीन ब्रिटिश राज्य सचिव लार्ड लिटन को सम्बोधित करते हुए लिखा था-

"मैं एक विदेशी सत्ता के अधीन कार्य नहीं कर सकता। मेरे विचार से जो व्यक्ति देश-सेवा का संकल्प रखता हो, वह ब्रिटिश राज्य के प्रति वफादार नहीं रह सकता है। मैंने अपने हृदय और आत्मा की सम्पूर्ण निष्ठा के साथ भारत की सेवा करने का संकल्प किया है अतः मुझसे ब्रिटिश सरकार के अधीन अफसरशाही का निर्वाह नहीं हो सकेगा।"

सुभाष के पद त्यागने की अभूतपूर्व घोषणा ने पिता की सारी आशाओं पर तुषारापात कर दिया। उन्होंने तार द्वारा सुभाष के पद त्याग का कारण पूछा जिसके उत्तर में सुभाष ने स्थिति स्पष्ट को, "इंग्लैण्ड के सम्राट के प्रति निष्ठावान् होने की शपथ ग्रहण करना मेरे लिए असम्भव था। वह प्रतिज्ञा ऐसे भद्दे ढंग से प्रारम्भ हो रही थी, जिसे मेरे हृदय ने स्वीकार नहीं किया।"

अगली जीवन यात्रा- आप कई बार जेल गये, कई बार छूटे। जेल से छूटकर कांग्रेस के साथ मिलकर कार्य करने लगे। आप अनेक सम्मेलनों के अधिकारी व संयोजक बने। एक बार 'नौजवान भारत सभा' के अधिवेशन में सभापति चुने गये। आपके भाषण की आड़ लेकर बिना मुकदमा चलाये आप को जेल में डाल दिया। आप त्रिपुरा कांग्रेस के सभापति चुने गये। एक बार पुलिस दल की आँखों में धूल डालकर पठान के वेश में काबुल से होते हुए जर्मनी पहुँचे। हिटलर से मिले। सहायता का आश्वासन पाकर जापान पहुँच गये, वहाँ आजाद हिन्द फौज की स्थापना की। आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की।

२३ अक्टूबर १९४३ को इस अन्तरिम सरकार के मन्त्री मण्डल की बैठक में ब्रिटेन और अमेरिका के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का निर्णय किया। यह निर्णय स्वयं सुभाष जी के भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए आजाद हिन्द फौज के प्रयास के साथ लागू हो गया। नेता जी ने सैनिकों का आह्वान किया-

"तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा।"

अन्ततः १९४७ में भारत विभाजन के साथ देश स्वतन्त्र तो हो गया, परन्तु उसका एक भाग कटकर पश्चिमी एवं पूर्वी पाकिस्तान (अब बंगलादेश) अलग हो गया। सुभाष चन्द्र बोस की सुलगायी आग ने परतन्त्रता को भस्म कर डाला और भारत भारतवासियों का हो गया, पर नेता जी का अता-पता न था।

सुभाष की मृत्यु का रहस्य- सुभाष बोस के सम्बन्ध में अफवाहों का बाजार गर्म था। कभी उनको रूस में बताया जाता तो कभी यह कहा जाता कि वे साधु के वेश में विचरण कर रहे हैं। नेता जी का जीवन रहस्य ही बना चलता रहा। बहुत वर्षों तक लोगों को यह विश्वास रहा कि यकायक नेता जी अवश्य प्रकट होंगे। एक दिन वे आयेगें और भारत का सारा मानचित्र बदल जायेगा।

अब इतना समय बीत गया है कि नेता जी सुभाष चन्द्र बोस का कहीं जीवित रहना असम्भव है। फिर भी भारत का इतिहास जब भी निष्पक्ष ढंग से लिखा जायेगा, तो उनका नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा। उनका अन्तिम समय कैसा भी क्यों न रहा हो, वह भारत के एक महान् सपूत थे और यह देश युगों-युगों तक उनको नमन करता रहेगा।

डॉ. सत्यप्रकाश (स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती)

(१९०५-१९९५) -पं. दीनानाथ शास्त्री

(१८ जनवरी बरसी पर विशेष रूप से प्रकाशित)

आपका अध्ययन इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हुआ। आपने रसायन शास्त्र विभाग से Physico chemical studies of inorganic jellies विषय पर डी.एससी. की उपाधि १९३२ ई.में प्राप्त की। १९३० ई. से ही रसायन शास्त्र विभाग में अध्यापन आरम्भ किया। १९६२ ई. में विभागाध्यक्ष तथा १९६७ ई. में सेवानिवृत्त हुये। आपके निर्देशन में २२ विद्यार्थियों ने डी. फिल. की उपाधि प्राप्त की।आपके १५०से अधिक शोध पत्र प्रकाशित हुये। वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा, Founder of Sciences in Ancient India] A Critical study of Brahmagupta and his works. The Bakhshali manuscript (भारतीय अंकगणित की उपलब्ध प्राचीनतम पाण्डुलिपि का गणितीय प्रक्रियाओं के साथ सम्पादन) Coins in Ancient India (मुद्राशास्त्र पर लिखा गया शोधपूर्ण ग्रन्थ) Advance Chemistry of Rare element, रासायनिक शिल्प की एक संक्रियाएं आदि उनके कुछ प्रमुख ग्रन्थ है। जितने विविध विषयों पर स्वामी सत्यप्रकाश जी का लेखन है शायद ही विश्व के किसी व्यक्ति ने इतना लिखा हो। वेद, शुल्बसूत्र, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, अग्निहोत्र, अध्यात्म, धर्म, दर्शन, योग, आर्यसमाज, स्वामी दयानन्द, नवजागरण आदि विविध विषयों पर सैकड़ों ग्रन्थ और लेख स्वामी सत्यप्रकाश जी द्वारा लिखे गये। चारों वेदों का अंग्रेजी में अनुवाद(पद २३ vol), शुल्बसूत्रों का सम्पादन, The critical study of philosophy of Dayanand और मानक हिन्दी अंग्रेजी कोश का सम्पादन उनके द्वारा किये गये उल्लेखनीय कार्य हैं। आप १९४२ई. में स्वतन्त्रता आन्दोलन में जेल भी गये। शतपथ ब्राह्मण पर आपके द्वारा ७०० पृष्ठों में भूमिका लिखी गई जो ग्रन्थ को समग्रता से समझने में बहुत सहायक है। आपने १७ से अधिक देशों की यात्रायें की। विज्ञान परिषद प्रयाग से हिन्दी मासिक विज्ञान पत्रिका का सम्पादन १० वर्षों तक किया। विश्वविद्यालय में रहते हुये डा. सत्यप्रकाश का लेखन मुख्यतः विज्ञान के क्षेत्र में रहा और संन्यास के बाद का लेखन वैदिक साहित्य आर्य समाज और स्वामी दयानन्द विषयक। स्वामी सत्यप्रकाश जी वैज्ञानिक विचारक चिन्तक संन्यासी थे। वे अपने विचारों को लेखों और भाषणों के माध्यम से व्यक्त भी करते थे। उनके विचार कई बार भिन्नता लिये होते और असहमति का कारण बन जाते परन्तु उस विषय में उनका चिन्तन जारी रहता था। स्वामी जी की शताधिक रेडियो वार्तायें तथा पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख हैं जिनका संकलन और प्रकाशन अभी शेष है। स्वामी सत्यप्रकाश जी द्वारा अंग्रेजी में लिखे ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद भी हिन्दी भाषी पाठकों के लिये अत्यन्त उपयोगी होगा। आपका देहान्त १९९५ ई. में अपने प्रिय शिष्य पं. दीनानाथ शास्त्री जी के आवास में अमेठी में हुआ। अन्त्येष्टि आर्य समाज विमान पुरी एच ए एल कोरवा अमेठी के प्रांगण में हुई। अन्त में रेणापुरकर जी के एक श्लोक से अपनी बात को विराम दूंगा!

वैज्ञानिकोऽपि निगमागमपारदृश्वा
साहित्यकाव्यकमनीयकलारसज्ञः।
निष्कामनिर्ममनिरीहयतिप्रकाण्डः
सत्यप्रकाश इति नाम गतःसुधन्यः।।

आवश्यक सूचना

प्रदेश की समस्त आर्य समाजों को सूचित किया जाता है कि अपनी समाजों के चित्र एवं दशांश शुल्क आदि यथाशीघ्र आर्य प्रतिनिधि सभा कार्यालय में अवश्य जमा कर दें। प्रदेश की समस्त आर्य समाजों को चित्र प्रेषित किये जा चुके हैं, परन्तु प्राप्त न होने की स्थिति में सभा कार्यालय के दूरभाष नम्बर-०५२२-२२८६३२८ पर सूचित करने का कष्ट करें ताकि चित्र पुनः भेजे जा सकें।

पंकज जायसवाल, मंत्री
आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र., लखनऊ

स्वामी-आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक-पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस,
5-मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है-सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।